जो शिलाएँ तोड़ते हैं

केदारनाथ अग्रवाल

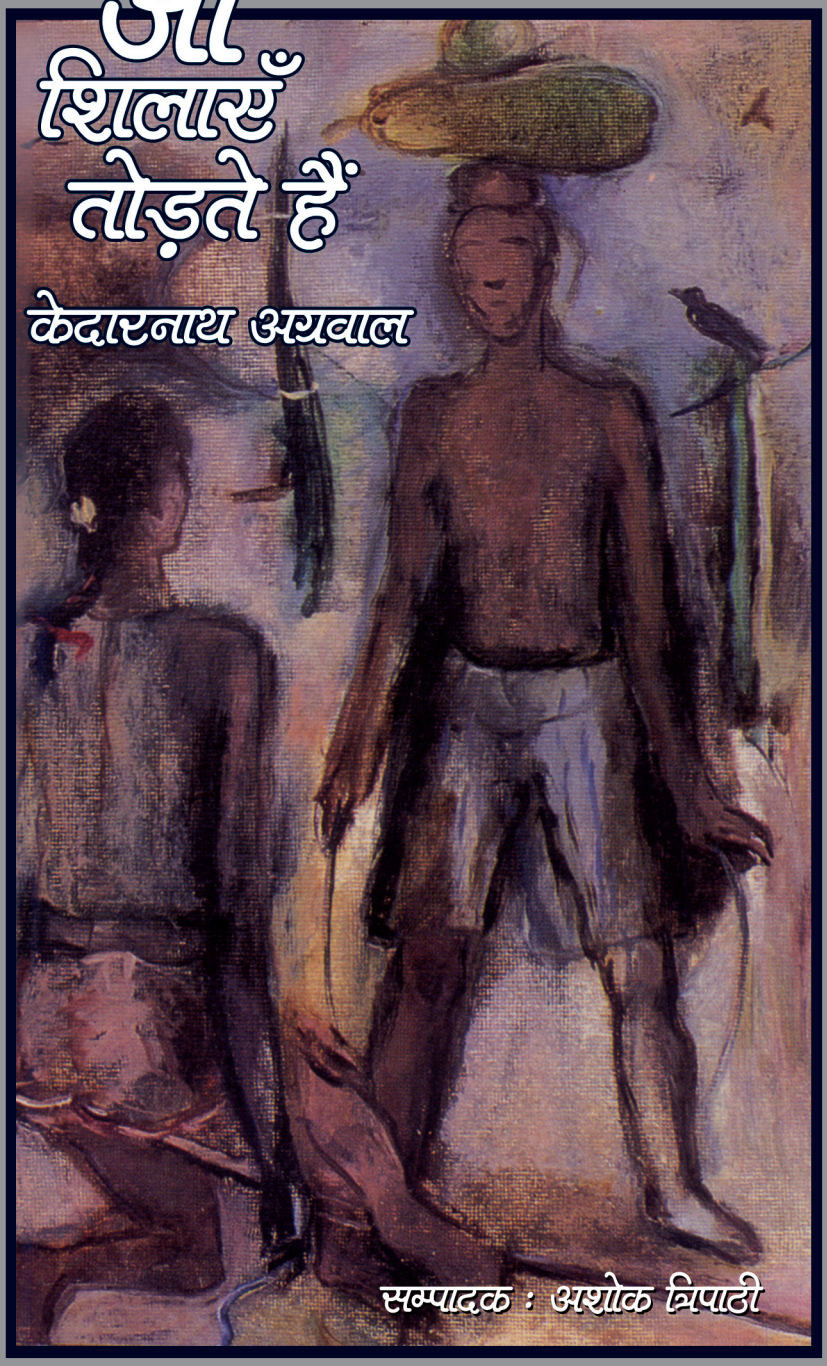

सम्पादक : अशोक त्रिपाठी

जो शिलाएँ तोड़ते हैं

(केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ)

सम्पादक

डॉ० अशोक त्रिपाठी

साहित्य भंडार

इलाहाबाद 211 003

I S B N : 978-81-7779-195-1

❁

प्रकाशक

साहित्य भंडार

50, चाहचन्द, इलाहाबाद-3

दूरभाष : 2400787, 2402072

❁

लेखक

केदारनाथ अग्रवाल

❁

स्वत्वाधिकारिणी

ज्योति अग्रवाल

❁

संस्करण

साहित्य भंडार का

प्रथम संस्करण : 2009

❁

आवरण एवं पृष्ठ संयोजन

आर० एस० अग्रवाल

❁

अक्षर-संयोजन

प्रयागराज कम्प्यूटर्स

56/13, मोतीलाल नेहरू रोड,

इलाहाबाद-2

❁

मुद्रक

सुलेख मुद्रणालय

148, विवेकानन्द मार्ग,

इलाहाबाद-3

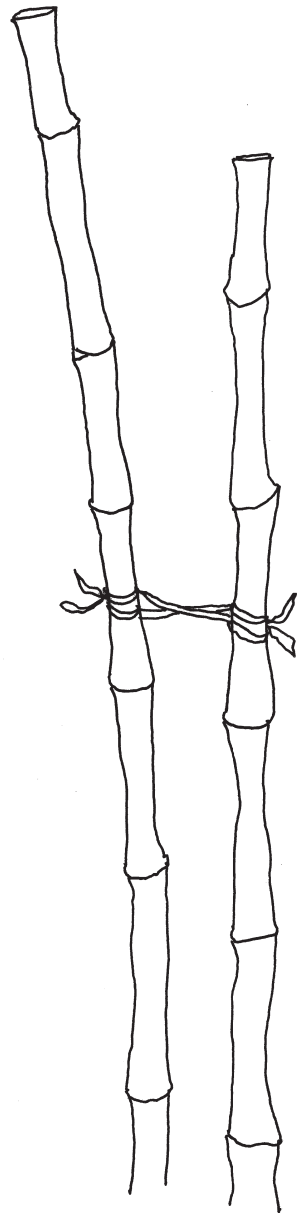

मूल्य : 250.00 रुपये मात्र

जो शिलाएँ तोड़ते हैं

प्रकाशकीय

इस संकलन का प्रकाशन 'साहित्य भंडार' के प्रथम संस्करण के रूप में सम्पन्न हो रहा है। केदारजी के उपन्यास 'पतिया' को छोड़कर, उनके शेष समस्त लेखन को प्रकाशित करने का गौरव भी 'साहित्य भंडार' को प्राप्त है। केदारनाथ अग्रवाल रचनावली (सं० डॉ० अशोक त्रिपाठी) का प्रकाशन भी 'साहित्य भंडार' कर रहा है।

एक तरह से केदार-साहित्य का प्रकाशक होने का जो गौरव 'साहित्य-भंडार' को मिल रहा है उसका श्रेय केदार-साहित्य के संकलन-संपादक डॉ० अशोक त्रिपाठी को जाता है उसके लिए 'साहित्य-भंडार' उनका आभारी है। यह गौरव हमें कभी नहीं मिलता यदि केदार जी के सुपुत्र श्री अशोक कुमार अग्रवाल और पुत्रवधू श्रीमती ज्योति अग्रवाल ने सम्पूर्ण केदार-साहित्य के प्रकाशन का स्वत्वाधिकार हमें नहीं दिया होता। हम उनके कृतज्ञ हैं।

भाई आर. एस. अग्रवाल ने इस संकलन को कलात्मक सज्जा प्रदान किया इसके लिए उनका आभार।

सतीशचन्द्र अग्रवाल
विभोर अग्रवाल
2009

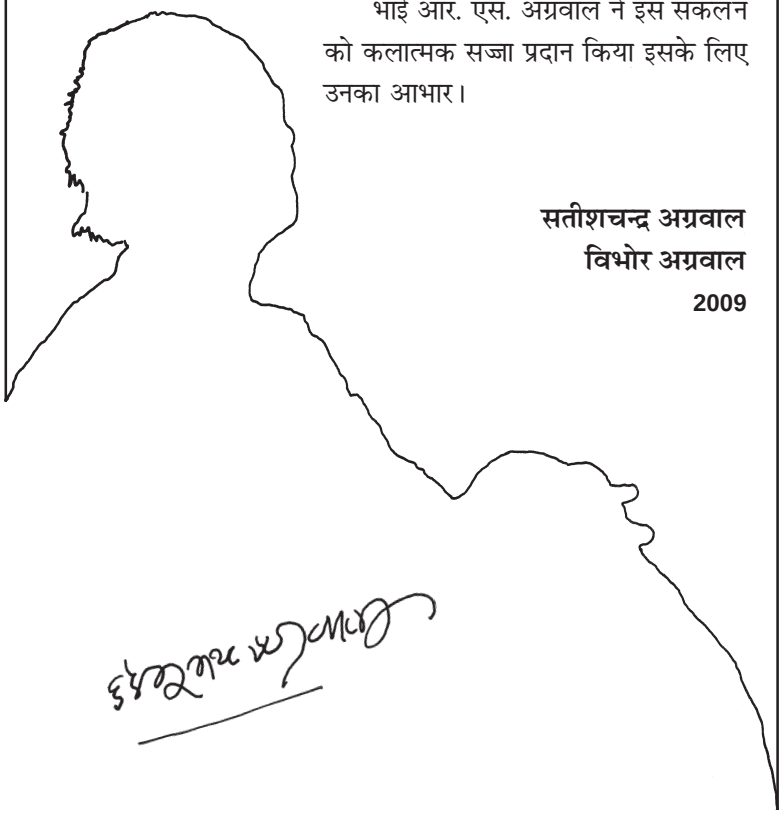

आलोचक पाठकों से

जों शिलाएँ तोड़ते है तथा इसके पूर्व प्रकाशित दो काव्य-संकलन 'कहें केदार खरी खरी' और 'जमुन जल तुम' एक विशेष योजना के तहत प्रकाशित किये गये। योजना का खुलासा 'कहें केदार खरी खरी' की भूमिका ('कैफियत' शीर्षक से) में विस्तार से किया गया है कि कैसे और क्यों केदारजी के समूचे साहित्य को प्रकाश में लोने की योजना बनी।

लेकिन खेद के साथ कहना पड़ रहा है कि हमारे यहाँ अपढ़ आलोचना का इधर काफी बोलबाला है। हमारे आलोचक पाठक बन्धु पुस्तकों को यहाँ-वहाँ से टटोलते हैं और एक चावल से पूरी बटलोई के चावल की स्थिति का पता चल जाने की तर्ज पर, पूरी कृति पर फतवा दे डालते हैं। कुछ-कुछ यही हादसा 'कहें केदार खरी खरी' के साथ भी हुआ। लोगों ने भूमिका पढ़ी नहीं, योजना की आत्मा तक पहुँचे नहीं और अपनी राय ठोंक दी 'इस संकलन में संकलनकर्त्ता ने संख्या बढ़ाने की दृष्टि से कमजोर कविताओं के संकलन का मोह नहीं त्यागा है।'

मुझे ऐसे लोगों की बुद्धि पर अगर कुछ आता है, तो मात्र तरस आता है, और कुछ नहीं।

केदारजी के पास कविताओं की कोई कमी नहीं है, न संख्या की दृष्टि से न गुणात्मकता की दृष्टि से। ऐसी स्थिति में जाहिर है कि संख्या बढ़ाने का कोई अर्थ नहीं हो सकता, इतनी समझ मुझे है; और न ही इन संकलनों के छपने से केदारजी की पहले से स्थापित आदमकद मूर्ति में कोई इजाफा होने वाला है, यह भी मैं जानता हूँ। अगर वे अब कुछ भी न लिखें और उनका कुछ भी प्रकाशित न हो, तब भी वे जहाँ स्थित हैं, वहाँ से टस से मस नहीं होंगे और वह स्थिति है- प्रगतिशील कविता का शीर्ष।

इस संकलन को लेकर केदारजी की अब तक तेरह काव्य पुस्तकें

प्रकाशित हो चुकी हैं और उन सभी संकलनों में कोई भी कविता ऐसी नहीं है, जो किसी दूसरे संकलन में हो। इतना समृद्ध है, केदारजी का काव्य-संसार। जब कि परम्परा ऐसी है कि कुछ कविताएँ इस संकलन की, कुछ उस संकलन की, कुछ नयी मिलाकर, जोड़-गाँठकर एक नया संकलन छपा दिया जाता है और संकलनों की संख्या में वृद्धि कर दी जाती है। यह क्रम, नया लिखने की अक्षमता में आगे भी कायम रहता है। केदारजी को इस छल-पद्धति का सहारा लेने की जरूरत नहीं पड़ी और न आगे ही पड़ेगी, क्योंकि वे सृजन कर्म में अभी भी पूरी ऊर्जा के साथ रत हैं, उनकी रचना-दृष्टि शत्-शत् सूर्यालोक से दीप्त है और संभावनाओं के अनन्त क्षितिज उसमें कैद हैं। वैसे अभी लगभग 500 कविताएँ तो पहले की लिखी हुई ही प्रकाशन की पंक्ति में हैं। इसलिए इन संकलनों के प्रकाशन की जरूरत संख्या बढ़ाने के लिए नहीं महसूस की गयी।

हाँ! अगर जरूरत महसूस की गयी तो महज इतनी कि केदारजी के प्रगतिशील रचनाकार की यह जो आदमकद मूर्ति है, इसके पहले के विकासमान उतार-चढ़ाव क्या हैं, किन-किन स्थितियों और मानसिकताओं से होता हुआ, शिल्प के कितने संघर्षपूर्ण मार्गों को तराशता हुआ, कवि शिल्प के वर्तमान शिखर पर पहुँचा, उसकी जाँच-पड़ताल की जा सके, ताकि नयी पीढ़ी इस विकास-यात्रा के पग-पग से रू-ब-रू हो सके । इसके साथ ही यह भी महसूस किया गया कि चूँकि अब तक का केदारजी का समूचा साहित्य परिमल प्रकाशन से ही छपा है, इसलिए उनकी पूरी रचना-सम्पदा को प्रकाशित करना परिमल प्रकाशन का दायित्व भी हो जाता है।

'कहें केदार खरी-खरी' की तरह उसके बाद प्रकाशित 'जमुन जल तुम' पर भी कुछ-कुछ इसी प्रकार के आरोप लगाये गये, जब कि 'जमुन जल तुम' की भूमिका 'कैफियत के बाद शीर्षक' से में पहले लगाये गये आरोप का उत्तर और पुनः योजना का स्पष्टीकरण किया जा चुका है ।

किसी भी वस्तु का मूल्यांकन उसकी रेखांकित विशिष्टताओं, वस्तुनिर्माण के उद्देश्य और उस उद्देश्य को पूरा करने में वस्तु की सार्थकता की कसौटी पर ही सही और न्यायसंगत होगा। अगर हम सुई

की आलोचना के लिए तलवार की कसौटी को स्वीकार करेंगे, तो जाहिर है हम अपने बुद्धि के दीवालियेपन को ही जगजाहिर करेंगे, लेकिन जिसे ऐसा करना होगा या जो वास्तव में ऐसा ही होगा, उसे मैं क्या-कोई भी ऐसा करने से रोक नहीं पायेगा।

इसलिए मैं अपने आलोचक पाठकों से प्रार्थना करूँगा कि एक बार 'कहें केदार खरी-खरी' की भूमिका जरूर पढ़ लें और योजना से अवगत हो लें, ताकि इस संकलन या इस योजना के तहत प्रकाशित होने वाले आगे के संकलनों के मूल्यांकन में वे न्याय कर सकें और उसकी भूमिका को रेखांकित कर सकें।

प्रस्तुत संकलन में सन् 1931 से सन् 1948 तक की अब तक पुस्तक के रूप में अप्रकाशित रचनाओं को संजोया गया है। इसके चुनाव के पीछे, मात्र काल-क्रम के और कोई दूसरा ऐसा आग्रह नहीं है, जिसे यहाँ बताने की जरूरत हो। ये कविताएँ केदारजी की 65 वर्षों की रचना-यात्रा के विकासमान राजमार्ग तक पहुँचने की ऊबड़-खाबड़, धूल-धूसरित, कंटकित कुछ खेत, सीवान, मेड़ और पग डंडियाँ हैं, जो यह इंगित करती हैं कि केदारजी की जनपक्षधरता केवल मौसमी उबाल नहीं है, बल्कि उसके पीछे एक संघर्षपूर्ण, सार्थक, सुदीर्घ रचना-परम्परा है।

केदारजी आज के नये रचनाकारों की तरह पुराने का विरोध मात्र पुराना होने के कारण नहीं करते। वे अपने पूर्व के रचनाकारों का सम्मान करते हैं, उनके प्रदेय को आभार सहित स्वीकार करते हैं और उन्हीं की परम्परा की डोर पकड़कर उसे कई नये मोड़ देते हुए आगे ले जाते हैं। वे सवैया भी लिखते हैं, कवित्त भी और समस्यापूर्तियाँ भी तथा तुकान्त रचनाएँ भी, पूरी मर्यादा की रक्षा करते हुए रचते हैं।

केदारजी गहन इंद्रिय-संवेदना, सामाजिक प्रतिबद्धता के गहरे सरोकार, आधुनिकताबोध और विकासमान ऐतिहासिकता की संयुक्त समझ से पैदा हुई भीतरी छटपटाहट, लोक-सौंदर्य और किसान-चेतना की मस्ती और उसकी उत्सव-धर्मिता के ऊर्ध्वमुखी कवि हैं। खेत, खलिहान, कारखाने, कचहरी, नदी, पहाड़, गाँव, शहर, फूल-पत्ती, पेड़-पक्षी, रंग-स्पर्श, गन्ध आदि के बहुआयामी सन्दर्भों के द्वारा मनुष्यता की तलाश के धरती से जुड़े वे एक ऐसे कवि हैं, जो इस युग की

अनास्था की आँधी और रेगिस्तानी लपट के बीच भी लहलहाते हुए आज तक हरे के हरे हैं और आगे भी रहेंगे।

उनकी कविता पूरी स्वस्थ सांस्कृतिक विरासत तथा स्थानीयता के इन्द्रधनुषी रंगों से रची-बसी, आदमी के संघर्षमय जीवन का आकुल संगीत है, जो युगीन दबावों और उसके अंतर्विरोधों को पूरी विश्वसनीयता के साथ उजागर करती है तथा शोषण की कलई खोलकर उसके विरूद्ध संघर्ष करने को प्रेरित करती है।

माटी की सोंधी गन्ध के गमकती केदारजी की कविता में शोषण-उत्पीड़न का अन्तर्विरोध, यथार्थता और सृजनात्मकता की अतुल संभावनाओं के साथ पूरी वस्तुनिष्ठता से मंडित कलात्मक ढंग से व्यक्त हुआ है। शोषण का विरोध तथा वर्ग-संघर्ष के साथ प्रेम की ऊष्मा, नारी और प्रकृति का सौन्दर्य, मार्क्सवादी वैज्ञानिक दर्शन, कचहरी की छल-छद्म-भरी जिन्दगी के मीठे-कडुवे अनुभवों, रोजमर्रा की जिन्दगी के छोटे-छोटे बिम्बों, या मनुहार के क्षणों के नन्हें-नन्हें ताजे टटके विविधपर्णी गुलमेंहदी के फूलों ने मिलकर ही कवि के संवेदन-संसार की रचना की है। उनकी कविता स्थानीय रंगों से रंगी, जनता की भाषा में वास्तविकता के तनाव और उसके सौन्दर्य को पूरी गहराई से पकड़ते हुए, ध्वन्यात्मकता, प्रवाह, लयात्मकता, दृश्य-बंधन तथा स्पर्श की आहट से हमारे संस्कारों को जगाती, दुलराती उनका परिष्कार करती है और जरूरत पड़ती है तो सीधी मार करने वाले पैने तथा महीन मार करने वाले गम्भीर व्यंग्य का चाबुक भी लगाती है।

यही कारण है कि रूप और कथ्य की, परिमाण और गुणात्मकता दोनों दृष्टियों से जितनी बहुआयामी विविधता केदारजी के पूरे साहित्य में मिलती है, उतनी दूसरों में नहीं। इसीलिए समीक्षक उनके मूल्यांकन के लिए जो चौखटा बनाते हैं, वह छोटा पड़ जाता है। यह संकलन भी एक ओर तो समीक्षकों के लिए यही मुश्किल पैदा करेगा, और दूसरी ओर केदार-साहित्य के विशाल फलक से साक्षात् करायेगा।

इस संकलन को आपके हाथों तक पहुँचने में आदरणीय अग्रज ओंकार शरद, भाई अश्वनीकुमार उपाध्याय (आई०एफ०एस०) तथा श्री राधेश्याम अग्रवाल (स्वत्वाधिकारी, इंपैक्ट, क्रियेटिव सर्विसेज, इलाहाबाद) ने जो मदद दी है, इसके लिए मैं इन सबका आभार मानता हूँ।

आदणीय केदारजी, जिन्होंने इस संकलन को मनचाहे ढंग से तैयार करने की मुझे छूट दी और अपना विश्वास दिया, उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ और उनके विश्वास की रक्षा कर सकूँ, इसके लिए मैं उनके आशीर्वाद का आकांक्षी हूँ।

अग्रज शिवकुमार सहायजी तो इसके कर्त्ता-धर्त्ता ही हैं, इसलिए उन्हें धन्यवाद देना और न देना दोनों बराबर हैं।

12.3.1986

22 लाउदर रोड, **-अशोक त्रिपाठी**

इलाहाबाद-211 002

अनुक्रम

कविता का शीर्षक या पहली पंक्ति	रचना-तिथि	पृष्ठांक
प्रेम-निवेदन	17.12.1931	19
आराध्य	18.2.1932	21
प्रभात-गान	1.3.1932	22
दीप शिखा	2.3.1932	23
माँ के प्रति	3.6.1932	25
सीख	12.61932	27
फूलों, फूलो, फूलो फूल	15.8.1932	29
दीपक	11.9.1932	30
चाँद	28.9.1932	32
जीवन-संध्या	25.11.1932	34
विवशता	1932	35
दीपक	1932	35
पद-चिन्ह	1932	36
कीर की विवशता	1932	36
बुलबुल की जबानी	1932	37
मालिन	1932	38
अभिलाषा	1932	39
कामना	1932	39
आधुनिक शंकर	1932	40
गंगा महिमा	1932	41
पति की टेक	27.3.1933	42
निराशावादियों के प्रति जीवन	10.5.1933	43
मित्र को पत्र	17.5.1933	46
कवि के गीत	18.5.1933	53
दीपक से	20.5.1933	54

पद्यांजलि	17.10.1933	57
विनय	30.9.1934	58
मेरा जीवन कवि का जीवन	20.10.1934	62
मेरे ईश्वर!	20.2.1937	64
उषा	18.3.1937	65
सुख तो मैंने जाना	1937	66
दोपहरी में नौका विहार	1937	67
कवि सूर्यकांत के प्रति	10.1.1938	68
मुल्ला अहिरिन	7.2.1938	69
जून की बरसाती वायु	3.6.1938	74
मकड़ी का जाला	16.6.1938	75
मेरी कविताएँ	14.2.1940	76
गाँव की औरतें	10.4.1940	77
गुरूवर	10.4.1940	78
बिल्ली	1.9.1940	79
धरती की मृत्यु है	9.10.1940	80
पुरवैया	19.10.1940	81
स्वाद	8.2.1941	82
अभयनाद	8.2.1941	83
मच्छर	8.2.1941	84
गौरैया	10.2.1941	85
फागुन का दृश्य	20.2.1941	87
फागुन	22.2.1941	89
जीवन	13.3.1941	90
देहात का जीवन	28.7.1941	91
घूरे की घास	30.7.1941	92
देखो स्वाँग अमीरों वाला	3.8.1941	93
लोग बड़े पागल हैं	6.9.1941	94
मैं	22.2.1942	96
कोई गिद्ध	29.2.1942	97

दूज के चन्द्रमा	25,4,1942	98
यह तो मुरदों की धरती है	23.5.1942	99
आदमी और ईश्वर	14.2.1943	102
बरसाती चाँद	17.2.1943	103
मेरे रूखे बाल	18.2.1943	104
बिड़ला मंदिर	10,6.1943	106
नर्क के कीड़े	28.6.1943	107
देहाती लड़की	16.7.1943	108
ओसौनी का गीत	2.8.1943	108
यदि अम्बुद न बरसते	4.8.1943	109
निरौनी का गीत	21.8.1943	110
टोटम और टैबू	2.9.1943	111
आदमी	28.10.1943	112
नव इतिहास	28.10.1943	113
लाल मिट्टी	28.10.1943	114
यही धर्म है	28.10.1943	115
ऐसा तन है	28.10.1943	116
बाप बेटा बेचता है	1943	117
बोतल के टुकड़े	1943	118
नयी जवानी	1943	120
कलकत्ते की दशा	1943	121
प्रहरी	1943	123
भैंस	1943	124
टामी	1943	125
आजाद खून	1943	126
काले कर्मठ	1943	128
घंटा	1943	129
जनता	6.3.1945	130
रात	10.3.1945	131
कवि जी	6.2.1946	132

बन्दी नेता को पत्र	10.5.1946	133
नेताओं से	8.8. 1946	134
जहरी	8.8.1946	135
कपड़े के अकाल में	12.8.1946	136
फाँसी का बन्दी	5.9.1946	137
जागरण की कामना	20.9.1946	140
हम उजाला जगमगाना चाहते हैं	28.9.1946	141
झरने दो	4.10.1946	142
मोती और टामी	15.10.1946	144
सीता मैया	10.11.1946	150
खेतिहर	24.7.1947	152
कुली	25.7.1947	153
इकाई और समाज	26.7.1947	154
देवतों की नींद	28.7.1947	155
कमकर	8.10.1947	156
यह जो लाल गुलाब खिला है	5.11.1947	158
यह जो दीप जला करता है	5.11.1947	159
यह जो आलिंगन होता है	5.11.1947	160
यह जो गान हुआ करता है	6.11.1947	161
यह ज सागर लहराता है	6.11.1947	162
यह जो अंकुर उग आए हैं	6.11.1947	163
यह जो दीवारें घेरे हैं	6.11.1947	164
यह जो चौड़ी चट्टानें हैं	6.11.1947	165
काले काले छाये बादल	7.11.1947	166
काले काले छाये बादल	7.11.1947	166
यह जो नाग उठे हैं काले	7.11.1947	167
यह जो आशा का उपवन है	7.11.1947	168
यह जो आँसू के सागर हैं	7.11.1947	169
यह जो स्वप्नों की छवियाँ हैं	7.11.1947	170
यह जो खंडित स्वप्नमूर्ति है	7.11.1947	171

यह जो नृत्यातुर बालाएँ	8.11.1947	172
यह जो सुंदरता सजती है	8.11.1947	173
यह जो अंगारे जलते है	9.11.1947	174
यह जो कौआ मोर बना है	9.11.1947	175
अंधकार के उर में लाखों दीप जले हैं	10.11.1947	176
यह जो दीपक आज जले हैं	11.11.1947	177
यह जो आज समीर प्रकंपित	12.11.1947	178
यह जो तरुओं की पत्रावलि	12.11.1947	179
काली मिट्टी हल से जोतो	12.11.1947	180
दीपदान की ज्योति हमारी	12.11.1947	181
यह समीर जो रुप कुंज का मधुपायी है	13.11.1947	182
यह जो प्रात समीर किरन से	14.11.1947	183
यह सुमेरू जो महामेक से टकराता है	14.11.1947	184
प्रात का सूरज	26.12.1947	185
भोर होवै	26.12.1947	186
स्चर्ण सबेरा	26.12.1947	187
विष-बीज	26.12.1947	188
चिड़ीमार	27.12.1947	189
दीपक और स्वप्न	28.12.1947	190
काश्मीर	28.12.1947	191
जोनी	28.12.1947	193
महकती जिन्दगी	2.8.1948	195
जो शिलाएँ तोड़ते हैं	9.11.1948	198

❐❐

जो शिलाएँ तोड़ते हैं

प्रेम-निवेदन

ओ शक्तिवान!
सामर्थ्यवान!
उस पार क्षितिज से गा न गान
वैभव पूरित यह गा न गान-
''मैं हूँ महान-मैं सुखनिधान।''
ओ शक्तिवान!
सामर्थ्यवान!

होते माता के चकित प्राण,
विस्मृतिकर वह शिशु प्रेम-ज्ञान
करती तव पूजा-पाठ-ध्यान!
ओ पूज्यवान!
सामर्थ्यवान!

शिशु निद्रित पलकें खोल खोल,
रो रो रह जाता बोल बोल-
वंचित सुख से माँ के अमोल।
ओ सुखनिधान!
ओ पूज्यवान!

मेरी लल्ली के अधर लाल–
से प्रेम गान गा विश्वपाल,
माँ हो उस पर प्रतिपल निहाल।
ओ शक्तिवान!
सामर्थ्यवान!!

उस पार क्षितिज से गा न गान
वैभव पूरित यह गा न गान–
''मैं हूँ महान–मैं सुखनिधान।''

17–12–1931

आराध्य

(श्री सोहनलाल द्विवेदी को उत्तर)

जिसकी छवि में विश्व मुग्ध है उसको 'जी से प्यार' करो,
उस 'प्रिय के चरणों में अपना जीवन धन बलिहार' करो।

'रूप रहा करता' सब दिन है 'आँखों को ललचाता',
फिर जैसे हो उस प्रसून पर 'अलि बनकर गुंजार' करो।

'हृदय-हृदय को अपनाकर बरसाता अमृत की धारा',
मोर बने रह उस घन के तुम 'नव जीवन' की चाह करो।

किन्तु जहाँ पर 'स्वार्थ ठहरने देता है दिन चार नहीं',
उन कर्मों को खोजो मत जिनसे दुखमय संसार करो।

अपने स्वामी-सा 'होगा चिरसंगी कौन विश्व-भर में',
'क्यों न उन्हें ही इष्ट मान निशि दिन पूजा-सत्कार करो॥'

18-2-1932

प्रभात-गान

माँ! कौन वहाँ रहता है?
वह जहाँ सुनहले नभ का रंग पानी में पड़ता है,
उसके भीतर घर किसका? कैसा अच्छा लगता है?
माँ! कौन वहाँ रहता है??

जल के ऊपर लहरों का हाँ, उधम नहीं मचता है,
छप् छप्कर कोई भी तो इक पोत नहीं बहता है;
माँ! कौन वहाँ रहता है??

मैं दौड़ वहाँ ही जाऊँ मन मेरा यह करता है;
देखूँ क्या कोई बालक रंग में खेला करता है?
माँ! कौन वहाँ रहता है??

माँ! परिचय पा उसका फिर जो खेल कहीं मचता है,
तो देखोगी दिन आहा, सुख से कैसे कटता है?
माँ! कौन वहाँ रहता है??

1-3-1932

दीप-शिखा

माँ! दीप-शिखा क्यों इतनी
पल-पल थर-थर कँपती है?

यह गोदी के बच्चे-सी-
लघु है फिर क्यों डरती है?

दिन-दिन भर कहाँ न जाने
यह छिपी छिपी रहती है?

निशि आते ही आती है,
मैं सोती, यह जगती है!

यह सँग में कभी न मेरे
आकर खेला करती है!

मैं भय से बच जाती हूँ
जब सँग में यह रहती है;

पर भय से यह सहमी-सी
बेचैन बड़ी रहती है!

माँ बड़ी निठुर है इसकी
जो इसे विलग रखती है!

माँ! तू ही इसे मनाकर
क्यों प्यार नहीं करती है?

हम दोनों ही को जब तू
'घर का दीपक' कहती है!

2–3–1932

माँ के प्रति

माँ! मैंने उस प्रभु को खोया।
तेरी गोदी में आ रोया!!

तन में तेरे, मन में तेरे,
कोमलता की झलक समाई!
इसीलिये फूलों-सी अपनी
कोमलतम यह 'गढ़न' बनाई।

रजकण से तू, तिनके से तू,
अपने मुँह छोटी कहलाई!
महाकार इसलिये छिपा निज,
लघु आकृति शिशु की दिखलाई॥

माँ! मैंने उस प्रभु को खोया!
तेरी गोदी में आ रोया!!

दयादेवि तू, दयापात्र मैं,
पाल मुझे तू पालनहारी!
प्रेम प्रदायिनि! आनंददायिनि।
जाऊँ तुझ पर मैं बलिहारी!!

मेरे हरि सा मुझे बना दे
ग्वाले को जैसे अवतारी!
आवे जिससे कभी न ऐसी
उसके खोने की फिर पारी!!

माँ! मैंने उस प्रभु को खोया।
तेरी गोदी में जा रोया!!

3-6-1932

सीख

(1)

आँख की फूली कट जाये।
आँख अपनी ऐसी आँजो।
आँख में घर कर लो सबके।
पलक आँखों की यों भाँजो॥

(2)

लाल पीली होती आँखें।
धूल मत आँखों में फेंको।
आँख पर बिठलाओ सबको।
आँख पर बैठ आँख सेंको॥

(3)

आँख में तिनका है सबके।
बुरा मत कुछ इसका मानो।
आँख पहिले अपनी देखो।
आँख औरों पर तब तानो॥

(4)

आँख उनकी चढ़ती सर पर।
ठोकरें जिनको खाना है।
आँख उनकी नीचे रहती।
सँभलकर जिनको जाना॥

(5)

आँख में हो चरबी छाई।
आँख जो पापों पर अटके।
आँख ऐसी तो मुँद जाये।
आँख जो आँखों में खटके॥

(6)

आँख का तारा है वह तो।
आँख में जिसके पानी है।
आँख में शील नहीं जिसके।
आँख उसकी ही कानी है॥

(7)

आँख के अन्धे के आगे।
आँख के मोती मत डालो।
'नयनसुख' जो सचमुच ही है।
हार इनका उस पर डालो॥

12-6-1932

फूलो, फूलो, फूलो फूल

फूलो, फूलो, फूलो फूल!
पंखुरियों के पंखों पर तन, तरु के कर के मंजु मुकुर बन,
रम्य रुपहले पूर्ण-चन्द्र बन, रजत-कटोरी दुग्ध-धवल बन;
फूलो, फूलो, फूलो फूल!

गोले गोले इकटक लोचन, भोले भोले बाल बदन बन,
कोमल-कोमल नवल-नवल बन, विकसित सुरभित सरस सरल बन;
हरे-हरे पत्तों से मिलकर, तरु मानों जलधार बहाकर,
सटकर गुथकर एक अंगकर, तुम्हें बिछा लें निज निज उर पर;
फूलो, फूलो, फूलो फूल!

थल महके, महके वर अम्बर, सागर सरिता और सरोवर,
महके अनिल सुरभि से भरकर, दश दिशि महके महर-महरकर;
आवें पागल प्रेमी मधुकर, बरबस खिंचकर और पुलककर,
बेबस बेसुध 'गुन-गुन' स्वरकर, गाँवें गीत प्रणय के मृदुतर;
फूलो, फूलो, फूलो फूल!

15-8-1932

दीपक

ओ दीपक! ओ ज्योति अमर!

गर्भाशय में अमानिशा के
किसने तुम्हें फँसाया?
आह, तुम्हारी विवश दशा लख
उर मेरा भर आया।

सिहर सिहरकर लौ कहती है
तुमने जो न बताया,
इस चुप्पी की निष्ठा में उफ,
ऐसा खेद छिपाया!

बढ़े ऊर्ध्व उच्छ्वास मार्ग से
इतना कष्ट उठाया!–
लाख लाख चक्कर पर चक्कर
प्रति पल तुमने खाया!

वातावरण तमोमय जो था
चलकर श्वेत बनाया,

किन्तु निकल जाने का तो भी
द्वार न कोई पाया!

आकर फिर रमकर दीवट पर
रोता हृदय दिखाया।
आये शलभ प्राण-धन देने,
बिगड़ा-खेल बनाया!

पागल होकर रोई रजनी,
फेंकी हीरक-माला,
चिर-समाधि-दीवट पर आई,
बिन्दु एक था काला।

दीखा उधर पूर्व से कोई,
हँसकर जाता ऊपर।
ओ दीपक! ओ ज्योति अमर!

11-9-1932

चाँद

(1)

तेरा अपना घर नभतल,
मेरा अपना घर भूतल;
तेरा सपना घर भूतल,
मेरा सपना है नभतल;

(2)

तेरा हँसना नभ-थल भर,
मेरा हँसना करतल भर;
तेरा रोना उड्गन भर,
मेरा रोना जीवन भर;

(3)

तेरा नव नेह विमल भर,
उमड़ा पड़ता सुख-सागर
मेरा नव नेह विमल भर,
जलता उर दीप निरंतर;

(4)

तुझको ढँकता घन श्यामल,
मुझको ढँकता दुख अंचल;
तेरा फटता घन श्यामल,
मेरा फटता उर कोमल;

(5)

तुझको उफ! राहु कुटिल डस,
श्री-हीन बनाता बेबस;
मुझको कब जन्म-मरण डस
मेरा हरते आत्मिक यश?

(6)

तेरा पद मुझसे घटकर,
मेरा पद तुझसे बढ़कर;
तेरी छवि बाहर-बाहर,
मेरी छवि भीतर-बाहर;

28-9-1932

जीवन-संध्या

जीवन-संध्या आवेगी री;
मुझे अतिथि-सेवा में अपनी,
तन-मन से विरमावेगी री;
श्रमित, व्यथित, कम्पित, क्षोभित-कर
मेरी ओर बढ़ावेगी री;
अपने नील-अधर तक मेरी
जीवन-प्याली लावेगी री;
मन से मेरे प्रेयसि! तेरी-
मीठी-याद भुलावेगी री;
गा तू यद्यपि गीत विदा के
उसको द्रवित बनावेगी री,
तो भी वह तो अवसर आते
बिना हिचक ही आवेगी री;
जीवन-संध्या आवेगी री!

25-11-1932

विवशता

इस राह को जाना नहीं है भला इसको हम पूर्व से जानते हैं,
दिल टूटते हैं चल थोड़ी-सी दूर इसे हम सत्य ही मानते हैं।
फिर भी इस शूल भरे पथ पै हम दौड़ने की हठ ठानते हैं,
कर ही सकते पर क्या हम हैं जब एक यही पथ जानते हैं॥

1932

दीपक

इतनी शान्ति और मादकता नेह शिखा में तेरे!
जिन्हें मोल प्राणों से लेते नित्य पतंग घनेरे।
यदि सम्भव होता मुझको भी लौ में लय हो जाना
जीवन की ही बाजी में फिर होता उनका पाना॥

1932

पद-चिह्न

पद भार से हूँ पथगामी के मैं इस नीची दशा को गिराया गया;
गति रोकी गई सर-तीर से है फिर पंक में खूब फँसाया गया।
नव-नेह-तरंग-तरंगित है कल कंज दिखा ललचाया गया;
भरमाया गया, तरसाया गया, कलपाया गया, न मिलाया गया॥

1932

कीर की विवशता

(1)

निज नीड़ की याद सताती यहाँ मन हो गया शोक से पूर्ण हमारा;
तिनकों का बना सुषमा से सना लगा डाल पै था प्रिय प्राण सहारा।
सुख का अब नाम निशान कहाँ! करते हैं बड़ी हम ऊब गवारा;
रचते हैं नया घर कल्पना में करते हैं सदा दृग नीर का चारा॥

(2)

उड़ना पर खोल के भूल गये, सुख सारे स्वतंत्रता के ठुकराये;
इस पींजड़े में बुरे आ फँसे हैं, चुगना अब दाने पड़े जो पराये;
दुख बाँटना साथियों का भी गया, हम आँसुओं से भी गये बिलगाये।
इस धाम के बासी का काम यही, सिया राम की मंजुल तान लगाये॥

1932

बुलबुल की जबानी

अगर बगीचा बन जाता हो नीड़ हटाकर मेरा,
शीघ्र हटा दो माली उसको, क्यों सुख हो कम तेरा!
मेरा सुख हो चुका हेतु यदि उपवन की दुख छाया,
लेकर उसे समेट विश्व से कर दूँ सिंधु समाया।
उड़कर दूर गगन में दुख के नीड़ करूँगी अपना,
अधजागी जीवन रातों में, देखूँगी सुख-सपना।
आते हुये पवन से लेकर सौरभ मद्य पिऊँगी,
दुख की चोट लगा अंतर में अनुभव मोद करूँगी।
समझूँगी, अब जो मुकलित हैं, हृदय कुंज में मेरे-
कुसुमाकर की प्रथम भेंट के मधुमय पुण्य घनेरे,
उनके चिर जीवन के हित यों भिक्षा इतनी कर दी,
अपनी आशा की कलियों से, विस्मृति झोली भर दी,
माया है उपवन में जिसकी हम उसकी छाया में।
शेष बिताना है अब जीवन रह इस ही काया में॥

1932

मालिन

वर वसन्त ऋतु की शोभा से, वन में थी शोभा छाई;
मृदुल फूल फूले हँसते थे, देख जिन्हें मालिन आई।
कर से तोड़ सरस सुमनों को, झोली में उनको डाला;
पिरो पिरोकर जिन्हें सूत में, रच डाली अनुपम माला।
लगे हुये दर्पण के सम्मुख, लिये उसे आई बाला;
डाल दिया प्रतिबिम्ब वक्ष पर, किन्तु पैर पर थी माला।
छलक पड़े मालिन के लोचन, हृदय निराशा से छाया;
शून्य चेतना हीन अवस्था को अपना उसने पाया।
उठा लिया तत्क्षण फिर उसने, पोंछ लिये दृग के आँसू;
भारी दुख के समय निकलकर, धीरज देते जो आँसू।
आकर दर्पण निकट खड़ी हो, मालिन ने पहनी माला;
फिर देखा प्रतिबिम्ब, वक्ष पर पड़ी हुई थी वह माला।
परम असीम ज्ञान की महिमा, मानस में उसके आई;
चारों ओर उपस्थित जग में, अपनी ही सत्ता पाई॥

1932

अभिलाषा

बिधि ने यह हो लिखा भाल में, यदि मैं सच ही बढ़ पाऊँ,
बनकर कुसुम खिलूँ, खिलकर मैं, फिर रजकण में मिल जाऊँ;
तो भगवन! वह तेरी ही हो, पदरज वहाँ परम प्यारी;
मिलकर जिसमें करूँ अन्त मैं, जीवन की घड़ियाँ सारी॥

1932

कामना

यदि भगवन्, तुम मुझे बनाना, फूल किसी उपवन का,
देकर रंग पराग मृदुलता, रूप बढ़ाना तन का;
हो इसलिये नहीं यह सब फिर, झोंका एक पवन का,
मिट्टी में अस्तित्व मिला दे, सोने से जीवन का।
होकर मैं आनंद, प्रेम से निज तन को छिदवाऊँ,
मोद पिरोया जाने में ही, जीवन का मैं पाऊँ।
माता सुत के गले पिन्हावे, लेकर फिर वह माला;
होता हो बलिदान देश हित, होकर जो मतवाला।
अच्छा है जीवन से अपने, निपटारा यों पाना;
अपना ही अस्तित्व मिटाकर, अपने को पनपाना॥

1932

आधुनिक शंकर

सारा पापाचार नष्ट होगा शीघ्र भारत का,
सत्यता-विमल-वर गंगा तू बहावेगा,
कपड़ा विदेशी आना बंद होगा भारत में,
चरखा त्रिशूल लिये पहरा लगावेगा।
दूरकर दासता पछाड़ पराधीनता को,
सत्याग्रह लोचन से आग बरसावेगा;
होके नौजवान वीर भारतीय सरदार,
शंकर का रौद्र रूप अब तू कहावेगा;

1932

गंगा-महिमा

(1)

भसम रमी है अंग रंग, रँग्यो अंग ही के,
सँग माँहि भूत प्रेत राखिबै की मति है॥
जहर जम्यो है कंठ कटि मैं कोपीन कसी,
घाली मुण्ड माल उर औघड़ की गति है॥
सेवत मसान नैन तीन कौ विकट्ट रूप,
बैल असवारी करै अजुबी सुरति है॥
कहते 'बालेन्दु' ऐसे अंग सती रमतीं न,
जो पै देखि लेंती नाँहि गंग लहरति है॥

(2)

पेखि रतिराज के कुकाज दोस रोष आन,
संकर सरूप यों भयंकर सों ह्वै रह्यो॥
कहत 'बालेन्दु' तव मदन कहन हित,
लोचन त्रिलोचन को तीसरी उघ्वै रह्यो॥
अगिनि प्रचंड बाढ़ि लागिगै छपाकर,
पै, सातो द्वीप नव खंड हाहाकार ह्वै रह्यो॥
बरनि बुझावन कों जरनि जुरावन कों
गंग हिम नीर जटा जूटन सों च्वै रह्यौ॥

1932

पति की टेक

सुन ले मेरी ब्याही औरत!
ऊपर से नीचे तक पूरा
अंगुल अंगुल इस देही का
मेरा ही बस मेरा ही है!

घर के भीतर बेंड़ी बेंड़ी
केवल दर्पण में मुख देखे;
लम्बे से घूँघट को खींचे
केवल चूड़ी की धुन सुन ले।

खाना ले ले, कपड़ा ले ले;
आने जाने दे यह साँसे;
पूरी कर दे पापी इच्छा;
दर्जन बच्चे पैदा कर तू!

27–3–1933

निराशावादियों के प्रति जीवन

एक बूँद अवसाद, सुखों के
सौ बूँदों का मेला!
कहते हो विष की प्याली में
मैं ही मिला अकेला!

'रोते आते जो आते हैं
जाते जो सकुचाते!'
बड़े क्रूर हो यदि तुम मुझको
ऐसा कठिन बताते!

आँसू की भाषा में भर दो
चाहे जितनी पीड़ा!
पीड़ा में ही तो होती है
सुख की लज्जा-क्रीड़ा!

फीकी लगती है मेरी-सी
लम्बी रात अकेली!
क्या सपनों से नहीं मिले हो
जिनकी प्रेम-हवेली?

तुम्हें देखकर कह सकता हूँ
तुम क्यों इतना रोते?
प्रायश्चितकर कभी नहीं तुम
हो अपना मुख धोते!

अरे! 'विनय के गुलदस्ते में
क्यों बस गई उदासी?'
कुछ कलियाँ रह गईं भूल से
जगतीं जगतीं प्यासी!

हाथ रँगे हो उफ! शोणित से
पर आँखें शरमाईं!
क्या बचकर बिजली से तुमने
की मेरी अगुवाई!

फूलों को चुनने आते हो
काँटों से बिंध जाते!
क्या मस्ती है अपना-सा मुँह
सब का लाल बनाते!

कहते हो, 'कोई रोता है
अभी न कलियाँ खोलो!'
मैं कहता हूँ इस मुँह से फिर
कभी न ऐसा बोलो!

जाग रहे हैं तारे सारे
उनको पास बुला लो,
ऐसे सोने से अच्छा है
अपने पास सुला लो!

प्रेयसि के पाने से पहले
मृत्यु कौन अपनाये?
वह भी कोई ईश्वर होगा
जो मरना सिखलाये!

कुछ भी नहीं तुम्हें पूछा है
की उसने नादानी।
अच्छा हुआ सुरूप-अर्चि पर
छिड़का अपने पानी!

'आई जरा दिखाई देता
नहीं दूर का कोई!'
पलकों से छूकर अब कह दो
मुझसा और न कोई!

कोटि विनय की तब बालों पर
कहीं सफेदी आई!
बहुत बड़े होने पर मैंने
यह सुन्दरता पाई!

ले चल मृत्यु! जहाँ चलना हो
कहने मुझे कहानी,
रामनाम ले चुकी देख ले
पहली मेरी वाणी!

10-5-1933

मित्र को पत्र

(श्री रामेश्वर शुक्ल अंचल के पत्र का उत्तर)

हे अभिन्न! हे प्रिय अक्षय मद!
हे मधु! प्रेम-विहार!
हे समीप-तट! हे सरोज-पथ!
हे हिमकर-अभिसार!
हे समीर! हे रोमांचित नभ!
हे प्रिय-आशा-यान!
हे प्रभात! हे पुष्प-स्वर्ग-पल!
प्रेम-हृदय! हे प्राण!
पत्र तुम्हारा मिला प्रेम वर!
ले भावी-भय-भार।
किन्तु, न इस उद्दाम लहर से
मुझको हुआ विकार!
कवि-विरोध की कोप-भावना
क्षुद्रों की फुफकार,
उनकी रौरव-विषम वाञ्छना,
उनकी कलि-चीत्कार,
उनकी दारुण, निर्मम, आहें,
उनकी प्रलय-तरंग,
उनकी कुत्सित कुशल-विषमता,
उनकी कलुष-उमंग,

छू न सकेंगी हम कवियों के
पावन प्रमुदित गात!
ला न सकेंगी हम तक कोई
'औघड़' झंझावात!
कवि क्या है? वह देवदूत है
जिसकी शक्ति महान,
जिसके संदेशों से होता
जग-जीवन-कल्याण!
कवि क्या है? वह अविचल तप है,
शाश्वत प्रेम-नियोग!
जिसका प्रभु से है मर्माहत
शाश्वत प्रेम-वियोग!
कवि क्या है? कल्याण-वेणु है
जिसकी मधुमय तान।
सुन पड़ती है, जभी बजाते
कोई भावुक प्राण।
कवि क्या है? वह पुष्प-तरी है
रूप-भरी द्युतिवान,
परिमल पर तिरती है जो ले
स्वप्नों की मुसकान;
इन्द्र-धनुष के पुल के नीचे
सप्त-वर्ण तत्काल
रँग देते हैं रंग विरंगा
जिसका कोमल पाल;
चढ़कर जिस पर, ले शशि

कर में रजत किरण पतवार,
ले जाता है जिसे दिखाने
कौतुक का आगार!
दूर्वादल के कर कोमल पर
मुख को अपने भोर,
विस्मित नयन-अधर तकती हों
मुदित हमारी ओर!-
जहाँ शांति-शीतल-छाया में
विचर रहा उच्छ्वास,
और अनेकों आ विरमे हों
स्मृतियों के मधुमास!-
उतर, जहाँ पर प्रकृति हृदय का
पागल अमित खुमार
पाल रहा मीलित पलकों में
मुँदी कली का प्यार!-
धेनु-पयोधर-से उन्मद अँग,
सुर-सम्पति-मद-पीन,
मधुकोषों में जहाँ गूँजते
अक्षय काव्य नवीन!
तड़-तड़पकर इसी तरह से
प्रतिपल भरकर आह,
हम सम्भवत: ले सकते हैं
कवि-जीवन की थाह।
खोल सकेंगे जो कवि जितने
अपने उर के घाव

–जैसे देती खोल कली है
नित नव नव चित–चाव–
वे उतने ही अमर बनेंगे,
उतने ही छविमान!
उनकी कविता से जागेंगे
हृदय हृदय के गान!
हम तड़पेंगे–अंत आज से
हो जा करुण–विलाप!
हम तड़पेंगे–अंत आज से
हो अभाग्य–अनुताप!
हम तड़पेंगे बुझ जा अब तो
अरी ज्वाल बिकराल!
हम तड़पेंगे अब तो रुक जा
निष्ठुर भैरव–काल!
हम तड़पेंगे–बिदा, बिदा उफ!
बिदा मृत्यु–उपचार!
हम तड़पेंगे, कहीं विजन में
बसे एक संसार,
हम हों जहाँ और हो कविता,
कविता की मधु–केलि;
पागलपन, ले पिला रही हो
सुरभि–पात्र, तरु–बेलि!
सजा रहे हों कुसुम–कुसुम सब
सुन्दरता के केश!
थिरके अनिल प्रणय के पट–सी,

हो रोमाञ्च अशेष;
निर्झर के मुखरित प्रवाह में
बहे हमारा यान,
पहुँचे वहाँ जहाँ ताने हों
तरु गन सघन-वितान;
मदमाती युवती शाखायें
लच यौवन के भार,
दोनों तट की हरित भूमि पर
पा शय्या-विस्तार,
कर न सकेंगी गीत हमारे
वे निस्पंद मलीन!
कर न सकेंगी ख्याति-व्योम में
अपना राज्य नवीन!
वे क्या हैं? वे नहीं हमारी
आत्म-वेदना, प्यार!
वे क्या हैं? वे नहीं हमारी
कविता के शृंगार!
वे क्या हैं? वे नहीं हमारे
अधरों की मुसकान!
वे क्या हैं? वे नहीं कल्पना-
वंशी की मृदु तान!
वे क्या हैं? वे नहीं अलौकिक
रूप-कूप-छवि नीर
जो कवि के चातक-जीवन की
हर सकता है पीर!
वे क्या हैं? वे नहीं झूमते

सौरभ-मत्त समीर,
उलझा जिसमें कुसुम-कुसुम का
रहता मादक चीर-
छूते ही, जिसके संग जाता
कवि लाने वे गान
खेल रहे जो घन-शिशुओं में,
फैला काव्य-वितान!
तब क्यों डरें उन्हें हम प्रियवर!
क्या उनका अधिकार?
दीर्घ असाहित्यिक जीवन के
वे तो हैं अवतार!
हम सबके प्रतिकूल उठेंगे
और कई तूफान
जो भयप्रद हैं और अमिट हैं
प्यारे आयुष्मान!
कितने ही मरुथल आवेंगे
हमें बनाने म्लान!
कितने ही बादल गरजेंगे
ले तम-तोम महान!
ज्वालायें प्रतिपल नाचेंगी
ले अनंत अभिशाप!
उगलेंगे भूकंप अनेकों
हम पर दाहक पाप!
शीतल तट तक जहाँ चलेंगे
देख देख सुख-नीर,
मृद-तृष्णा ही वहाँ मिलेगी

पीड़ा प्रिये अधीर!
तरह तरह से तंग करेंगे
आलोचक शैतान!
हमें रुलायेंगे काँटे से
उनके कुटिल विधान!
हम आयेंगे काव्य-कुंज में
नित होगा अपमान;
हम गायेंगे, नहीं सुनेंगे
लोग हमारे गान!
हम तड़पेंगे-बिदा अरे
ओ विषाद! उन्माद!
हम तड़पेंगे-बिदा हमारे
जग! ओ अवसाद! प्रमाद!
हे अरुणोदय-बन्धु! प्रेम का
अपना रूप अनूप,
बाल-बादलों की छाया में
करो न व्यर्थ कुरूप!
पाया है कवि ने अनादि से
दुख का ही वरदान;
आँसू का, पीड़ा का, विस्तृत
आहों का निर्वाण।
इस जग में आने से पहले,
कवि होने से पूर्व,
विकल न होने का दृढ़ निश्चय
हमने किया अपूर्व!

जो कुछ भी हो सहते जाओ
गाते जाओ गीत,
उठता है वेदना-कली से
अमर आत्म-संगीत।

17-5-1933

कवि के गीत

न अन्तिम नव नव कुसुम विकास
न अन्तिम खग कुल-कलरव हास,
प्रथम नूतन नित् छवि-संगीत
प्रथम नूतन नित् कवि के गीत

18-5-1933

दीपक से

('प्रेमा' के कवर के चित्र को देखकर)

भाग्यवान! तू सिहर रहा था
भरकर अन्तिम आहें;
सब समेटकर ही ले लीं थीं
मुख पर अपनी बाहें
रूप रश्मि का पल में होता
जग-पलकों में सोना;
चिर-समाधि सा बन जाता तब
निशि का कोना कोना;
तम का पट तब फैला होता,
कलियों का मुँह मैला!
ओस बिचारी रो-सी देती
फिरता तमचर छैला!
निद्रा के अधरों पर रुककर
सपना तनिक सिहरता;
सोई सुन्दरता के सिर का
जूड़ा तनिक खिसकता;
अंतिम क्षण मेरा भी होगा
क्या न मनोहर ऐसा?
रूप रूप को जगा रहा है,
दोनों हैं दीवानें,

नहीं मानते मृत्यु कहाँ है,
कैसे हैं मनमाने!
एक बुलाता हाथ बढ़ाये,
'बलिबेदी से आओ
मेरे साथ सदा जीने में
प्रेम-प्रकाश बढ़ाओ;
आँखों में आओ चितवन से
मेरे तीर चलाओ;
अलकों में आओ मेघों से
बिजली खूब गिराओ!
आओ अधर-कपोलों पर तुम
चुम्बन-रास रचाओ।
छूकर कुच-कुम्भों का यौवन
झूम झूम तुम गाओ!
सुन्दरता यदि सुन्दरता को
अपने अंग लगाये,
तब ऐसा है कौन विश्व में
जो उनको बिलगाये?'
चला दूसरे बलिबेदी से
प्राणों पर इतराता,
आलिंगन को चिर-चुम्बन को
मृदु किरणें फैलाता!
वह कहता है-रूपसि तेरा
है संसार निराला
फीकी है इसके सम्मुख तो

सुरपति की छविशाला।
अमर देश है तेरा रानी!
तेरी अमर कहानी!
नहीं मृत्यु की रूप-राज्य में
होने पाई अगवानी!
तू मेरे प्रभु से अच्छी है
अरी! प्रेम की प्याली!
परिचय-हीन प्रणय से कर ली
प्राणों की रखवाली!
लोक साथ हैं तेरे सारे,
तू कब रही अकेली?
रूप! आज दे चूमूँ तेरी
स्वर्ग समान हथेली!

20-5-1933

पद्मांजलि

ले ले प्रभु! नीरव पद्मांजलि

यह तन कोमल नवल कमल दल
नत नयनों का ही तप अविकल
स्वप्निल कुन्तल का यह परिमल
भक्ति-भाव का पुष्प विमल कल
ले ले प्रभु! मेरी पद्मांजलि।

नारी का यह लघुतम साधन,
सुन्दरता का प्रियतम मधु-धन,
जीवन का यह चिर आकर्षण,
मैं करती हूँ तुझे समर्पण;
ले ले प्रभु! नीरव पद्मांजलि।

17-10-1933

विनय

एक एक सब
मेरे बन्धन
खुलें आज अब;

हरो शीघ्र तम,
पापात्मा का,
मानस का तम;

दुर्बल तन-मन,
चंचल-दुख में,
फिरूँ न बन-बन;

'मैं' और 'मेरा',
सदा बता तू,
सब कुछ तेरा;

पाये निश्चय,
मेरी आत्मा,
तेरा आश्रय;

मैं सुन्दरतम,
तेरे सम्मुख,
एक किरन सम;

शक्ति प्रबलतर,
मेरे कर में;
फूलों में भर।

निर्भय, निर्मम,
तू तिरने दे,
एक तरी सम;

तेरी कृति, सच,
तूफानों से,
जायेगी बच।

दे यह भिक्षा;
पूर्ण करूँ मैं,
तेरी इच्छा,

मधुर-अधर तक,
कभी न लाऊँ
एक गिला तक;

गीत - छन्द-प्रिय;
कोयल-सा हो
जीवन, मधु-प्रिय

अँध - भारमय,
कभी न होवें,
पंख वेगमय;

विनय करूँ नित,
पा जाऊँ मैं,
कृपा अपरिमित;

उर में घर कर,
छाप न छोड़े,
भ्रम की मोहर;

मृत कर, घातक
सन्देहों के
धुँधले दीपक;

दुख से बचकर,
दृढ़ विश्वासी
हो गम अन्तर;

निश्चय द्रुततर,
समय-मुक्त हो,
पहुँचूँ बढ़कर,

भूल दिशा-मति,
पाऊँ तुझको,
त्याग तर्क-गति।

जहाँ निरंतर,
तारक-सा तू,
ज्योतित मनहर।

एक एक सब
मेरे बन्धन,
खुलें आज अब;

परिवर्तित कर,
प्राण-वायु में,
मृत्यु शेष कर।

20-9-1934

मेरा जीवन कवि का जीवन

मेरा जीवन कवि का जीवन
सकल असत स्वप्नावलि परिहर,
प्रातः सबसे पहले जगकर,
करता सत् तत्वों का दर्शन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
किरन-निकर वर से आमंत्रित,
संसृति की वीणा से, सस्मित
करता प्रिय छन्दों में वन्दन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
प्रेम-विकल अविरल मधुराधर,
ऊषा के मधुराधर पर धर,
करता नव-जीवन का चुम्बन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
सरल-नवल मधु-मुकुलों में खिल,
मुदित, भ्रमित, प्रिय भ्रमरों में मिल,
गंधित-गुंजित करता मधुबन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
लहर लहर को छूकर, कसकर,
सर-सरिता-सागर में बसकर,
करता प्रतिपल प्रतिपल नर्तन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
विधुर-तरुण तरु-शिखरों पर चल,
लतिकांचल में चंचल-चंचल,
करता साहस-सुख-संचालन;

मेरा जीवन कवि का जीवन,
नव-नव आशा-रस से विकसित,
प्रेम-प्रीत-परिमल से सुरभित,
करता मानव का आलिंगन।

20-10-1934

मेरे ईश्वर!

मुझे बता दे मेरे ईश्वर! कष्ट न क्या कम होंगे?
बाधक और विरोधी पर्वत क्या न कभी सम होंगे?
रपटीला है पथ दुर्गम है; निर्बल मैं चलता हूँ!
आगे को लख, तब पीछे से पाँव उठा हटता हूँ!
एक नहीं–दायें-बायें हैं खाईं खाईं खाईं
जिनमें दानव जीव-जन्तुओं की है गूँज समाई!
भय है! भय है! साहस छुटता, मैं व्याकुल कँपता हूँ।
जीवन की पीड़ा से पीड़ित मैं रोता रहता हूँ!
एक वेदना–एक यातना नहीं, अनेकों रहतीं,
रूला-रुला मेरी आत्मा को प्रति क्षण जीतीं जगतीं!
वे न शांत होतीं, जाती हैं; मैं उनसे पिस जाता,
आह! आह! क्या जीवन-रोदन ही जीवन कहलाता?
सुख तो मैंने कभी न जाना; सुख है छलना, छाया!
बचपन और युवापन इनमें कुछ भी भेद न पाया–
बीत चुका है एक, दूसरा निर्ममता से रोता;
एक घाव पुर गया, दूसरा प्रति पल गहरा होता!
कौन सुखाये मेरे आँसू? किससे रोना रोऊँ?
कहकर क्या अपनी पीड़ा की सच्चाई भी खोऊँ?
मुझे बता दे मेरे ईश्वर! कष्ट न क्या कम होंगे?
क्या छूकर तेरे चरणों को वे न मधुरतम होंगे?

20–2–1937

उषा

थी अभी वहाँ जो पूर्व दिशा
तम का राक्षस जिसको हरकर
ले जाने को था दृढ़ तत्पर;
हाँ, वही बिचारी पूर्व दिशा
व्याकुल, बेबस, रोती झर झर,
गल गई अन्त में पूर्व दिशा!
उफ, क्रमशः देह विमल सुन्दर
तपकर पिघली सोना बनकर,
थी अभी वहाँ जो पूर्व दिशा!
इससे जन्मी अब देवि उषा!
बलिदान हुआ साकार अमर!
जग का यौवन साकार अमर!
तुम अमर रूप हो देवि उषा!!

18–3–1937

सुख तो मैंने जाना

सुख तो मैंने जाना
केन-किनारे उसे देखता,
अरुणोदय के साथ खेलता;
दोपहरी की धूप झेलता,
सान्ध्य-स्वर्ण-श्री-दीप लेसता;

गाता निशि का गाना।
सुख तो मैंने जाना॥

कोई उससे नहीं बोलता,
साथ न कोई कभी डोलता,
लहरों में पीयूष घोलता,
पुलकानिल में पंख तोलता,

मिलता है मस्ताना।
सुख तो मैंने जाना!!

1937

दोपहरी में नौका विहार

कल जैसी दोपहरी बीती वैसी कभी न बीती!
यों तो जाने कैसी कैसी दोपहरी हैं बीतीं,
कमरों में प्यारे मित्रों में हँसते गाते बीतीं;
कल जैसी दोपहरी बीती वैसी कभी न बीती!
गंगा के मटमैले जल में छपछप डाँड़ चलाते,
सरसैया से परमठ होते, उल्टी गति में जाते,
तन का सारे जोर जमाते–धारा को कतराते,
आस-पास के जल-भ्रमरों से अपनी नाव बचाते,
धीरे-धीरे मजे-मजे से रुकते औ' सुसताते,
चुल्लू दो चुल्लू पानी पी मुँह को तरल बनाते,
आर-पार सब ओर ताकते आँखों को बहलाते,
पल-पल सूरज की गरमी में गोरे गात तपाते,
हाथों को मल-मलकर, रह रह दुख-संताप मिटाते,
फिर भी मौज मनाते, गाते, गुन-गुन गीत सुनाते,
खेते रहने की धुन में ही बढ़े चले थे जाते!
मैं था और मित्र थे मेरे, दोनों थे सैलानी;
काले घुँघराले केशों की वे थे खुली जवानी!
मैं थी लाल कपोलों वाली महिमामयी जवानी।
दो थे हम पर, दोनों की थी एक समान कहानी!

एक बजे से लेकर हमने साढ़े पाँच बजाये,
एक नहीं–छै छै छालों से दोनों हाथ दुखाये!
किन्तु नहीं हम इन छालों से किसी तरह घबराये,
चूम चूम तो हमने इनको मीठे दाख बनाये!

1937

कवि सूर्यकांत के प्रति

इतने ऊपर उठ गए आज कवि
हम नीचे से देख रहे, तुम–
वहाँ नील–मुक्ताभ–वर्ण–व्यंजित प्रदेश में
पहन पाग केसरिया गाते
साथ–साथ रुनझुन रुनझुन रागिनियाँ करतीं,
कविता की प्रतिमा जग जाती,
प्रिय सहस्त्रदल अरुण कमल की अंजलि भेंट चढ़ाते!
हमें सूर्य की व्यापक प्रतिभा चकित बनाती!!

10–1–1938

मुल्लो अहिरिन

मुल्लो अहिरिन
गठिया ऐसी
ठिगनी-ठिगनी
लुढ़क-मुढ़ककर
चली जा रही।

सात, आठ, नौ
साल बाद के
उसके लौंडे
बड़े हो गये!
खुद सत्ताइस।

खाती-पीती,
सब कुछ करती,
किन्तु न बढ़ती
ज्यों की त्यों है
उतनी छोटी।

जिसने देखा,
उसी रूप की,
उसी रंग की,
इतनी छोटी
उसको देखा।

बाप नहीं है;
मात नहीं है;
सगा न कोई
घर में अपने
एक वही है।

चौदह-पन्द्रह
लिए बकरियाँ
घूम-घूमकर
दूर गाँव से
चली चराने।

गाँव पारकर
खेत पारकर,
मुल्लो अहिरिन
पहुँच गई हैं
अब पतार में।

आसमान सब
धूप-भरा है,
धरती नीचे
धूप-भरी है
तपन बढ़ी है।

इधर-उधर सब
कहीं यहाँ पर,

इस पतार में,
बम्बुर-बम्बुर
खड़े दीखते।

तीन चार कुछ
और दूसरे
लौंडे भी तो
वहीं चराते
अपनी बकरी।

ताड़ गए वे;
घूम पड़े वे;
पहुँच गये वे;
घेर लिया, कह-
मुल्लो आई!

बैठ गई वह;
बैठ गए वे;
झीनी-झीनी
ऊपर छाया
बम्बुर की।

सबने उससे
बारी-बारी,
प्यार जताया
प्यारी! प्यारी
खूब पुकारा।

एक लगा जब
छाती छूने,
मुल्लो बोली,
इन्हें न छूना
दोख लगेगा!

कहा एक ने–
चुम्मा देना!
मुल्लो बोली–
अभी न माँगो,
सब माँगेगे।

हाथ एक ने
डाल कमर में
बोला–प्यारी,
कह न सका कुछ
और, रहा चुप!

मुल्लो बोली–
उसको पकड़ो,
वह रम्पा है
तुमको तो कल
उसने पटका!

इसी समय तब
बों-बों करता,
गपुआ वाला
तगड़ा बकरा
फौरन झपटा!

'मार-मार' कह
मुल्लो दौड़ी
अपनी बकरी
तुरत बचाई
लौंडे हँसते!!

7-2-1938

जून की बरसाती वायु

दिन की लुआर रुकी
मानो खड्ग झुकी, गिरी, टूट गई;
मृत्यु मिटी!
शाम के सुहाग-सिंधु से अमंद
वायु उठी दिगदिगन्त!
रोम रोम से प्रकम्प फूट पड़ा,
वृद्ध हड्डियों से
आसमान की, यौवन उमड़ पड़ा-
छलक, छलक पड़ा
घड़ा रस-भरा मधु-यामिनी के शीश का!
प्राण मिले धरणी को,
मरु को समुद्र मिला एक एक बूँद में!
वक्ष खुले,
हृदय धुले,
धुले मेरु खंड खंड,
गूँजा स्वर सजल, अनंत का!!

3-6-1938

मकड़ी का जाला

दार्शनिक की कोठरी में–
लाखों ज्ञान-ग्रन्थ जहाँ
लक्कड़ से एक पर एक सुँचे पड़े हैं,
और जहाँ,
एक ओर एक कोढ़ी
टूटी चारपाई पर लेटा हुआ
मौत को पुकारता है आँख मींचे;
वहीं–उसी कोठरी में बाईं ओर
मकड़ी के जाले का
एक तार बाकी रहा बुनने को!!

16-6-1938

मेरी कविताएँ

स्वादी संसारियों को
मेरी कवितायें, दोस्त!
वैसी ही रुचेंगी जैसे
रोटी हथपोई मुझे
परवर के सूखे साग
कड़ुवे मिरचे के साथ
खूब रुचीं
तुमने जो बनाईं थीं!

14–2–1940

गाँव की औरतें

गाँवों की औरतें
गन्दी कोठरियों में हाँफती–
खाँसती, खसोटती रूखे बाल
घिसती हैं जाँता जटिलतर;

गाँवों की औरतें
सूखा पिसान फाँक–फाँककर,
पीठ–पेट एक कर–हाड़ तोड़
मरती हैं पत्थर रगड़कर!!

10–4–1940

गुरुवर

गुरुवर बतलाते व्रत
शिष्यों को संयम का
ब्रह्मचर्य पालन का।
उनकी पवित्र वाणी
कमरे में भरती है
कर्कश कर शांति-भंग!

मन ही मन बालक-गण
गुरुवर को मूर्ख मान,
उनकी बकझक बिसार
आँखों की कोरों से
देखते हैं चुपचाप-
दोनों कबूतरों को
ऊपर जो कानिस पर,
पंखों पर पंख रखे,
करते हैं गुटुरगूँ!

10-4-1940

बिल्ली

बिल्ली ने दूध सब पी लिया
पंजों से मुँह पोंछ
बिल्कुल निश्चिन्त हो
खिड़की पर बैठ गयी काजल के रंग की!
हेमा ने रो दिया,
बिल्ली ने दूध सब पी लिया!

बाहर भी आर-पार
छाई है घोर घटा,
बदली ने धूप सब पी लिया।
प्रकृति ने रो दिया!

पानी का दौंगरा
पहरों तक खूब गिरा,
दुनिया सब डूबती!

धरती आकाश की
काली दो बिल्लियाँ
आँखें चमकाती हैं
घातक षड्यंत्र में

1-9-1940

धरती की मृत्यु है

धरती की मृत्यु है!
कोड़े की मार-से
चमड़ी को खींचते,
पड़ते हैं जोर से
पानी के दौंगरे!
धरती की मृत्यु है!!

बीहड़ घन-घोर की
ठोकर की चोट से
तड़-तड़ हो टूटती
हड्डी की खोपड़ी!
धरती की मृत्यु है!!

गुस्से से गाज भी
खूनी नाखून से
छाती को छेदती
दिल को मरोड़ती!
धरती की मौत है!!

9-10-1940

पुरवैया

कोमल दूब हरी धरती पर
विद्युत की शोभा से सजकर
नाच रही युवती पुरवैया!
लय में लीन अचंचल होकर
एक दृश्य हो रही मनोहर;
चारु चित्र चंचल पुरवैया!
दल के दल बादल छहराकर
नील नवल लँहगा लहराकर
घेर रही क्षिति को पुरवैया!
सरका चीर, खुला अवगुंठन,
निर्जन में होता सम्मोहन,
रोम रोम माती पुरवैया!
बजते हैं बूँदों के घूँघर
होता है मादक मीठा स्वर
करती है छम छम पुरवैया!!
कोमल दूब हरी धरती पर!!

19–10–1940

स्वाद

भून दो आलू को आग में;
गोले को,
जिस पर हम रहते हैं,
डाल दो इसको भी आँच में;
स्वाद तब आयेगा दोनों को!!

8-2-1941

अभयनाद

प्रात:काल मंदिर में
अभयनाद होता है–
बम् बम् बम् महादेव!

गंगा–स्नानकर एक जन आया;
श्रद्धा से–भक्ति से
शिवजी की मूरत पर दूध को चढ़ाया;

मन ही मन बोला वह–
मैं तो प्रभु चोर हूँ;
मेरी भी माफी हो,
भक्तों में आपके मेरा भी नाम हो;
मैंने तो पाप भी आपके भक्तों से
कम ही किया;

देखो तो,
सेठों ने लूटकर दुनिया की दौलत को
आपको थोड़ी दी;

उसको भी मंदिर के रक्षक ने
आपसे छीनकर
चोरी से पेट में भर लिया;

मैं तो इन सब से प्रभु! अच्छा हूँ;
मेरा उद्धार हो!
प्रात:काल मंदिर में
अभयनाद होता है

8-2-1941

मच्छर

मस्ती में झूमते मच्छण महाशय जी
कोने में पहुँचे जब गाते सितार पर
फौरन मुँह खोल के नन्हीं छिपकली ने
गुट्ट से गुटक लिया!
मौत मुँह बाये है दुनिया के वास्ते!!

8-2-1941

गौरैया

मेरे यहाँ
घर में जहाँ सब कोई
पूरे कामकाजी हैं,
कोई तो निठल्ला नहीं बैठता है,
सौदापाती बेचने में
होते ही सबेरा सब ऐसे फँस जाते हैं
भुनगे दस बीस जैसे मकड़ी के जाले में!

मेरे ऐसे घर में,
जिसे बहुत फुरसत है
यही गौरैया है।

इसका एक खोंचकिल है
खपरों के नीचे और धन्नियों के बीच में;
नाचती है, कूदती है आँगन में;
एक ही उछाल में
ऊँचे अक्कास में
ऐसी तन जाती है जैसे वहाँ घर हो;

फिर मुझे ऊपर से, आँगन में खड़ा हुआ
देखती है देर तक!

और जब
पीले पीले पन्नों में किताब के
मेरा ध्यान जमता है,
फुर्ती से नीचे आ,
फुर्र फुर्र करती हुई
सामने ही आँगन में
नाचती है, कूदती है;
मेरा मन मोहती है!

दुनिया के धन्धों से उचाट पैदा करती है!
चूँ चूँकर
चूँ चूँकर
लाख बार, सौ बार,
दिन में हजार बार,
ऐसे ऐसे गीत गाकर
मुझको सुनाती है
मैंने जिन्हें सुने नहीं।

मेरी गौरैया का मेरा बड़ा प्यार है!

10-2-1941

फागुन का दृश्य

पूर्व दिशा ने खेली होली
लाल गुलाल अबीर उड़ाया
मार मार केसर पिचकारी
सराबोर कर दिया प्रकृति को,

सर को खोले, गुहे चोटियाँ
गेहूँ की सुकुमार बालियाँ–
पके रंग–दुबले शरीर की–
खड़ी खेत में रँगी राजती;

चले हवा के हल्के झोंके
तन से खुलते वस्त्र–पत्र के;
एक एक से मिलकर सटकर
लज्जा से लग गयीं सँभलने;

देख देख यह दृश्य मनोरम
छैलचिकनिये चले ठुमकते,
अपनी अपनी मधुर घेटियाँ
बजा रहे हैं खुश हो होकर;

भ्रम में पड़े गाय और बछड़े
पूँछ उठाकर घुमा रहे हैं
पलक मारकर जल्दी जल्दी
रँभते बचते कूद कूदकर;

इधर उधर मेड़ों के ऊपर
सुन्दर सुन्दर चतुर पुछारें
सतरंगे पखने फैलाये
नाच रही हैं किन्नरियों सी;

टुइयाँ की मीठी-सी बोली
प्यारी प्यारी प्रेम-पगी है;
शरमीली कोयल की मीड़ें
मंत्र मारतीं वशीकरण के;

एक ओर रसराज-विभव है,
प्रकृति-मोहिनी की माया है;
एक ओर सब बन के पंछी
वीर भाव से सैरा गाते!

20-2-1941

फागुन

दिन आये फागुन के
मैदानों-खेतों से
गावों के ऊपर से
हर करके कुहरे के गाढ़े से घूँघट को,
ऊषा की लज्जा की लाली में रँगने के
दिन आये फागुन के!

आभूषित आशा की कोंपल से आच्छादित
वृक्षों की बाहों को प्रेमाकुल फैलाये,
मीठी-सी मस्ती में तन्मय हो जाने के!
रस भर के मधुभर के पंखुरियाँ यौवन की
वन वन में उपवन में शरमीले फूलों की,
दिन आये फागुन के!

आमों के बागों में झाझों की झनझन में
ढोलक की बोली में बंशी की मीड़ों में

कोयल की तानों के यानों में उड़ने के
दिन आये फागुन के!

आँचल के पल्ले से पगड़ी के मिलने के
हत्तल पर सुकुमारी चितवन के नर्तन के
चोली के सम्पुट में लय होके जीने के
दिन आये फागुन के!

22–2–1941

जीवन

बार बार लगातार
सिगरेट मैं पीता हूँ;
जलती है मेरी आग,
जिन्दा हूँ–मुरदा नहीं!

13–3–1141

देहात का जीवन

सुन तो जल्दी अरी घसिटिया!
आ जा बाहर जल्दी से तो!!

बीसों बोल बुलाए मैंने
होकर खड़े दुआरे तेरे।
तू मत समझे, अभी अभी ही
गुप्त काम को मैं आया हूँ!!

धूप भरी है अभी बावली!
रात अँधेरी दूर पड़ी है।
मत चिकनाए गाल कलूटे,
तेल थपोके सर पर कडुवा!!

सुन तो जल्दी, जल्दी से सुन;
पकड़ गया है दादा तेरा!
जाने कैसा जुलुम किया है!
थाने में रोता है बैठा!!
दौड़ दौड़ तू, जल्दी जा तू!
मैं जाता हूँ भैंस चराने!!

28–7–1941

घूरे की घास

घूरे की यह घास
जाने कैसे पानी पाकर
उग आई है जैसे उगते
नीचों की छाती पर बाल।

घूरे की यह घास
छाई है हरियाली लेकर
नीचों की देही में जैसे
छा देता है कौतुल काल।

घूरे की यह घास
काला भैंसा खा जाता है,
जैसे असमय डस जाता है
नीचों को ऊँचों का ब्याल।

घूरे पर की घास!

30–7–1941

देखो स्वाँग अमीरों वाला

देखो स्वाँग अमीरों वाला
मोटे ताजे गद्दे पर वह
बैठा है टेढ़े मुँह वाला
काला है मुँह, सुन्दर कपड़े
डाले है मोती की माला!

देखो स्वाँग अमीरों वाला
बेटा भूतल के कुबेर का
पैदाइस से है धन वाला
क्या जाने वह कैसे आता
पैसा खून पसीने वाला।

देखो स्वाँग अमीरों वाला!!

3-8-1941

लोग बड़े पागल हैं

लोग बड़े पागल हैं!
औरत को देखकर
उसकी सुन्दरता पर मोहित हो जाते हैं,
देवी है–कहते हैं!
लोग बड़े पागल हैं!!

पैरों के पास रख, अपना दिल काटकर
सारे संसार को त्यागकर औरत को पूजते;
लोग बड़े पागल हैं!!

तीर न कमान कुछ
आँखों के तीरों से घायल हो,
बे मौत मरते हैं पाप के गड्ढे में!
लोग बड़े पागल हैं!!

जाने किस भाँति वे
ओठों को चूसकर
अमृत ही अमृत ही बस पीते हैं जीवन में!
लोग बड़े पागल हैं!!

साड़ी के कम्पन में,
पायल की रुनझुन में,
प्राणों की वीणा के सुनते हैं स्वप्न-गीत!
लोग बड़े पागल हैं!!

कुन्तल खुल जाने पर,
कमरे के भीतर ही–
बे मौसम बादल-दल फौरन ले आते हैं!
लोग बड़े पागल हैं!!

अन्तर की पीड़ा से व्याकुल विरहाकुल हो,
पत्थर पिघलाते हैं निर्जन में;
लोग बड़े पाल हैं!!

घूँघट को खोलकर चाँदनी के
चन्द्र-मुखी चूमते;
घोर आकाशी-व्यभिचार है!
लोग बड़े पागल हैं!!

औरत की देह को सूक्ष्मातिसूक्ष्म कर
आँखों में बन्दकर स्वप्नों को देखते!
लोग बड़े पागल हैं!!

मरने के बाद भी
अर्द्धांगी पाने की आशा में रहते हैं;
लोग बड़े पागल हैं!!

औरत को औरत ही मानकर,
औरत को प्यारकर,
क्यों नहीं आदमी-से रहते संसार में!!

6-9-1941

मैं

आदि शक्ति मैं;
अजर अमर मैं; परम ब्रह्म मैं;
करण और कारण मैं भव का;
मैं प्रकार, आकार, रूप मैं,
राग, रंग, परिमल, पराग मैं;
तेज, ताप मैं;
स्वर, लय, गति मैं;
पूर्ण, मुक्त, मैं;
महावेग मैं;
चिर-नूतन मैं; चिर अव्यय मैं!
किन्तु.....किन्तु.....,
मैं नहीं आज सब!
अधिवासी मैं मिट्टी के क्षत-विक्षत घर का!!

लोना खाई
दीमक खाई
दुर्बल निर्बल दीवारों का, मैं अधिवासी!

मेरी पत्नी तम की तिरिया;
मैं हूँ, मेरा चिह्न न कोई;
प्रतिभा का प्रतिबिम्ब न कोई;
मकड़ी मेरा बन्धन बुनती!
मुसटी मेरी आयु कुतरती!!
मैं अधिवासी मिट्टी के क्षत-विक्षत घर का!!

22-2-1942

कोई गिद्ध

कोई गिद्ध ले उड़े
पंजों में दाबकर दुनिया को,
दूर आकाश से छोड़ दे नीचे को
सत्य के पर्वत की चोटी पर,
जोर से टक्कर खा
भीषण चट्टानों की,
नष्ट हो, चूर हो एक बार!!

29-2-1942

दूज के चन्द्रमा

देश के बच्चे
सुकुमार दूज के चन्द्रमा
अस्तप्राय वैदेशिक संध्या के राज्य में
कढ़ आए, शोभित असिधार ले, हँसते!

देश के बच्चे
झंडा ले हाथों में
गर्वीली माता की गोदी में
दुश्मन की गोली से प्राण दे देते हैं,
स्वर्ग को जाते हैं,
सच्चे आदर्श हो जाते हैं!
देश के बच्चे!!

25-4-1942

यह तो मुरदों की धरती है

हर ओर यहाँ–सब ओर यहाँ
शहरों में, विद्युत–भवनों में
छप्पर के छोटे दरबों में
मुरदे ही मुरदे रहते हैं
यह तो....

मुरदा पुरखों की छायाएँ
पैदाकर मुरदा सन्तानें
मुरदा मिट्टी के जीवन के
मुरदा परिवार बसाए हैं
यह तो....

शासक भी, शोषक भी मुरदा
परजा भी, पीड़ित भी मुरदा
बलहीन बली दोनों मुरदा
ज्ञानी अज्ञानी हैं मुरदा
यह तो....

सुख सम्पति की साँसें मुरदा
आशा की बल्लरियाँ मुरदा
आजादी के सपने मुरदा
यह तो....

पावन फूलों की मालाएँ,
तन्दुल पूजा की थाली के,
श्रद्धा भक्तों के अन्तर की,
बिल्कुल मुरदा–बिल्कुल मुरदा
यह तो....

नारी का चुम्बन भी मुरदा
नर का आलिंगन भी मुरदा
प्रणयी–प्रणयिनि की छवि मुरदा
सब रूप–प्रेम जग का मुरदा
यह तो....

बलिदानव्रती, कल्याणरती
दृढ़ चित्त, अजेय, चिरंजीवी
चिरकालिक सत्य सहोदर–सा
वह भी मुरदा–वह भी मुरदा
यह तो....

आकाश–अवनि के अंगों के
मलयानिल के प्रतिरंध्रों के
जल–पावक के मृदु स्पंदन को
सोया खोया मुरदा पाया!
यह तो....

दिनकर अंधा होकर उगता;
हिमकर अंधा होकर उगता;
नक्षत्र बुझे से ही रहते;
है ज्योति यहाँ सबकी मुरदा!
यह तो....

रंगीन तितलियों का यौवन
सुरचाप कुमारों का यौवन
सुकुमार कली-कुल का यौवन
क्षण भर में हो जाता मुरदा
यह तो....

विज्ञान बरसता है गोले;
संहार प्रतिक्षण होता है;
यमराज अवनि पर आया है;
हो गई प्रकृति भी अब मुरदा!
यह तो....

चुपचाप, द्रवित हो-व्याकुल हो
मैं आँखों में मुक्ता ढाले,
दिनरात बहाता हूँ धारा;
है अश्रु, हृदय दोनों मुरदा!
यह तो....

23-5-1942

आदमी और ईश्वर

ईश्वर को आदमी ने जन्म दिया,
ईश्वर ने आदमी को नहीं दिया।
ईश्वर से मतलब क्या आदमी के जन्म से!
आदमी तो जीवन-विकास का प्राणी है!!
ईश्वर तो बाद को आया है;
आदमी ने उसको तो
केवल कौतूहल से
भावना के पिंड से रचाया है।
आदमी ने ईश्वर को रूप दिया;
आदमी ने ईश्वर को बड़ा किया;
आदमी ने ईश्वर को शक्ति दिया;
आदमी ने ईश्वर को ज्योति दिया;
आदमी ने ईश्वर को ज्ञान दिया;
आदमी ने ईश्वर को विश्व दिया;
आदमी ने ईश्वर को कोष दिया;
आदमी ने ईश्वर को आयु दिया;
आदमी ने ईश्वर को भाव दिया;

आदमी ने ईश्वर को शब्द दिया,
आदमी ने ईश्वर को अपना सर्वस्व दिया।
ईश्वर ने आदमी को नहीं दिया एक वस्तु!
आदमी का प्यारा पुत्र ईश्वर है।
ईश्वर का पुत्र नहीं आदमी है!!

14–2–1943

बरसाती चाँद

नाग डसा यह चाँद दिखा है!
मूर्छित है, काला पड़ता है;
एक जगह पर रुका पड़ा है!
मुँह से विष ही विष का फेचकुर
दिक्मण्डल पर बरस पड़ा है!

17–2–1943

मेरे रूखे बाल

मेरे सर के रूखे बाल
मेरी रक्षा ही करते हैं!
मेरे सर के बाल!

मैं बेचारा–सर्वस हारा,
धक्का खाकर गिरने वाला,
मिटने वाला, मरने वाला,
आदर्शों के पीछे पीछे
दौड़ा दौड़ा मारा मारा
फिरने वाला,
मैं बेचारा

खून चूसने वाले रण में
जब बेकस घूमा करता हूँ
टूट टूटकर चलने वाली साँस साथ ले
आस साथ ले
तब मेरे यह रूखे बाल
एक साथ मुरचाबन्दी कर

पूर्ण युद्ध में पूरे बिंधकर
वर्षा रितु की बौछारों से
होने वाले वार सहस्रों
एक एक कर सह लेते हैं
होते नहीं परास्त, पराजित;
जय होती है!
जय होती है!!

मैं जय विजयी फिर बढ़ता हूँ
आगे बढ़कर फिर बढ़ता हूँ
बारम्बार यही करता हूँ
आदर्शों की ओर लपककर
जीवन-केतु लिए रहता हूँ।
मैं लड़ता हूँ,
जय करता हूँ

मेरे सर के रूखे बाल
मेरी ही रक्षा करते हैं!
मेरे सर के बाल!!

18-2-1943

बिड़ला मंदिर

दिल्ली का यह बिड़ला मंदिर,
हिन्दू-धर्म-स्थल अति पावन,
ईश्वर-सत्ता का दृढ़ रक्षक,
देशवासियों के समूह को
आकर्षित करता है प्रति क्षण।

यह ऐसा है
जैसे कोई धनी लुटेरा,
किसी देवकन्या के उर से
रत्नहार अनमोल लूटकर,
राजनगर की रति-पारंगत,
अनुपम, वेश्या के उरोज पर,
उसे स्वार्थ-सिद्धि में डाल गया है।

10-6-1943

नर्क के कीड़े

हाथ तुझसे जोड़ता हूँ
भूख के मारे मरा मैं
द्वार पर तेरे गिरा मैं
एक दाने के लिए मुहताज बस दम तोड़ता हूँ

हाथ तुझसे जोड़ता हूँ
तू जिएगा, मैं मरूँगा
पार भवसागर करूँगा
नर्क के कीड़े तुझे मैं नर्क में ही छोड़ता हूँ

हाथ तुझसे जोड़ता हूँ
मौत मेरी दे सँदेसा
हो अमीरी को अँदेसा
आज चलते वक्त तेरी शक्ल से मुँह मोड़ता हूँ
हाथ तुझसे जोड़ता हूँ

28-6-1943

देहाती लड़की

चुलबुल पनघट के ऊपर चढ़
नौजवान देहाती लड़की
हाव भाव की चिकनी सिल पर
रपटी ऐसी, धोती उघरी
नहीं नेवासी कोरी गागर
टुकड़े टुकड़े होकर टूटी;
गहरे अन्ध पताल कुएँ में
उसकी पूरी देही डूबी॥

16–7–1943

ओसौनी का गीत

साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा
दौरी साधौ अन्न ओसावौ अउर उड़ावौ पैरा
ताल ठोंकि कै मारि भगावौ जेते ऐरा गैरा
अन्न बटोरौ, रासि लगावौ छुइले परबत चोटी
देस भरे के खेतिहर खावौ पेट पेट भर रोटी
साइत आई साइत आई बहय गजब की बैरा
काटी माँड़ी फसल परी है गावौ यारौ सैरा॥

2–8–1943

यदि अम्बुद न बरसते

यदि अम्बुद न बरसते
तो धरती करुणार्द्र न होती; अंकुर कभी न उगते
हरी घास का जन्म न होता, सूने वन पथ रहते
तरुओं में तारुण्य न होता, रूखे सूखे लगते
कलियों की सौन्दर्य भेंट से जन को वंचित रखते;
प्यारे नद भी रजत-रेख हो मरु में खोए रहते
प्यासी आँखों वाले यात्री कभी न पार उतरते;
प्यारे आसमान के तारे कभी न भू पर बसते
लहरों के आँचल से लिपटे जीवन-यापन करते;
दावानल से कुंज कुंज के सारे बाँस झुलसते,
हरे बाँस की बंशी ध्वनि को व्याकुल प्राण कलपते;
नाद और संगीत कला के प्रिय स्वर सोए रहते,
पशुता के पाषाण न कटकर, गलकर, प्रति पल बहते;
काली दुनिया के दीवट के दीपक कभी न मरते,
विद्युत की स्वर्गीय ज्योति छू कभी न पल भर जलते;
अन्न राशि के रूप न मुक्ता भू पर कभी बरसते,
निर्धन के खेतों में जाकर श्रीपति मुदित विहरते

4-8-1943

निरौनी का गीत

खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत
घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास
घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास बढ़ति है घास
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

खेत भरे के धान दबति हैं धान दबति हैं धान
धान दबति हैं धान दबति हैं धान दबति हैं धान
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

टेई खुरपी का अजमावौ जोर जमावौ जोर
जोर जमावौ जोर जमावौ जोर जमावौ जोर
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

चारा को मूँड़ी से पकरो; चारा खोदौ आज
चारा खोदौ चारा खोदौ चारा खोदौ आज
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

बेर करौ ना बेर करौ ना बेर करौ ना बेर
बेर किए पर नाहीं पैहौ सुन्दर सोन सबेर
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

खेतिहर भैया! खेतिहर भैया! खेतिहर भैया चेत
मूँड़ी काटे देश मिलत है; चारा काटे खेत
खेत निरावौ खेत निरावौ खेत निरावौ खेत

21-8-1943

टोटम और टैबू

ऐसा न करो,
वैसा न करो;
यह धर्म नहीं,
बस धर्म यही;
यह नहीं उचित,
यह है समुचित,
यह पाप अरे,
यह पुण्य अरे;
इस टोटम से,
इस टैबू से;
हम नष्ट हुए,
हम भ्रष्ट हुए;
दुनिया बिगड़ी,
दुनिया पिछड़ी;
तम छाया है
गम छाया है

2–9–1943

भरा ठेला खींचता हूँ

भरा ठेला खींचता हूँ
खड़े सूखे चने चाबे
रोट मोटा एक खा के
कड़ी कंकड़ की सड़क पर बाहुबल से खींचता हूँ

भरा ठेला खींचता हूँ
हाथ में गट्ठे पड़े हैं
पाँव में ठट्ठे पड़े हैं
और इस पर तर पसीने से अकेला खींचता हूँ

भरा ठेला खींचता हँ
कर्म की सच्ची लगन है
पेट का ऐसा जतन है
आदमी हूँ आदमी का भार भारी खींचता हूँ
भरा ठेला खींचता हूँ

28–10–1943

नव इतिहास

नित्य नव इतिहास बनता
आज यह कल से नया है
आज से यह कल नया है
रक्त धारा का प्रखर आवेग बन्धन तोड़ बहता

नित्य नव इतिहास बनता
भावनाएँ चूर होतीं
धारणाएँ चूर होतीं
कामनाओं से निरन्तर आदमी बनता बिगड़ता

नित्य नव इतिहास बनता
चक्र परिवर्तन विचरता
काल से कोई न बचता
आज का संसार कल को नहीं रहता नहीं रहता
नित्य नव इतिहास बनता

28–10–1943

लाल मिट्टी

आज मिट्टी लाल दिखती
कालिमा सब धो गई है
हेय जड़ता खो गई है
रेणु के परिमाणुओं में विकट शोणित-ज्वाल जलती

आज मिट्टी लाल दिखती
श्वेत हैं शशि, श्वेत तारे;
श्वेत हैं हिम शृंग सारे
क्यों नहीं इनमें किसी में यह अरुण मधु-ज्वाल मिलती

आज मिट्टी लाल दिखती
नारि नर ने प्राण वारे
हैं अमर बलिदान प्यारे
दूध में माँ के समाई देश की नव लाज जमती
आज मिट्टी लाल दिखती

28-10-1943

यही धर्म है

यही ध्येय है–यही धर्म है!!
मैं हिम्मत से शीश उठाऊँ,
परवशता को रौंद भगाऊँ;
नत मस्तक जीते रहने में बहुत शर्म है, बहुत शर्म है!!

यही ध्येय है–यही धर्म है!
मैं लोहू में आग लगा दूँ,
लाल लपट का प्रात जगा दूँ,
नौजवान होने के नाते मेरा पहला यही मर्म है!!

यही ध्येय है–यही धर्म है!
यदि मरने का अवसर आए
मत विचलित हो मन घबराए
हर गुलाम का चौड़ा सीना दमित देश का अमर वर्म है!!
यही ध्येय है–यही धर्म है।

28–10–1943

ऐसा तन है

ऐसा तन है
छोटा है दुबला पतला है
मिट्टी का कच्चा पुतला है
लेकिन पौरुष का अजेय यह सिंह सदन है

ऐसा तन है
विद्युत की अगणित धाराएँ
शत सहस्त्र जागृत ज्वालाएँ
नित इसके अणु अणु में करतीं नव नर्तन हैं

ऐसा तन है
खून खौलता लौह पिघलता
लावा जैसे धावित रहता
महाक्रान्ति की इसकी गति में अति जीवन है

ऐसा तन है
उच्च हिमालय का गौरव है
हिन्द महासागर का रव है
रोम रोम में आजादी की प्रिय कम्पन है
ऐसा तन है।

28–10–1943

बाप बेटा बेचता है

बाप बेटा बेचता है
भूख से बेहाल होकर,
धर्म, धीरज, प्राण खोकर,
हो रही अनरीति बर्बर राष्ट्र सारा देखता है।

बाप बेटा बेचता है,
माँ अचेतन हो रही है,
मूर्छना में रो रही है,
दाम के निर्मम चरण पर प्रेम माथा टेकता है।

बाप बेटा बेचता है,
शर्म से आँखें न उठतीं,
रोष से छाती धधकती,
और अपनी दासता का शूल उर को छेदता है
बाप बेटा बेचता है।

1943

बोतल के टुकड़े

बोतल के टुकड़े गड़ते हैं
घर आँगन में
जहाँ हृदय के मनहर नटवर
अपनी मीठी बाँसुरिया पर
तान छेड़ आह्लादित होकर
विस्मृति में नाचा करते हैं

बोतल के टुकड़े गड़ते हैं
पुष्प-सेज पर
जहाँ स्वप्न की सुन्दर रानी
नव वसंत का यौवन लेकर
रूप प्रेम मधु गन्ध पिलाकर
बार बार हियहार बनी बलि बलि जाती है

बोतल के टुकड़े गड़ते हैं
अन्तस्तल में
जहाँ भावनाओं की आँखें
खिलीं जलज-सी, सूर्योदय का-

विपुल आत्मा के प्रकाश का
मुग्ध मधुर चुम्बन करती हैं

बोतल के टुकड़े गड़ते हैं
जीवन-पथ पर
जहाँ पेट के बल धरती पर
कड़ी मार कोड़ों की खाकर
अन्धकार में सारी जनता
त्राहि त्राहि रेंगा करती है।

1943

नयी जवानी

नयी जवानी कर मनमानी
युग युग बीते आहत होते;
जकड़े रहकर रोते-धोते
आज सुना दे अपने मुख से नये राष्ट्र की शोणित वाणी।

नयी जवानी कर मनमानी
चितवन की विद्युत चमका दे
यहाँ वहाँ सब कहीं गिरा दे,
विंशकोटि आजादी माँगे बन्धन बने विमूढ़ कहानी।

नयी जवानी कर मनमानी
बड़े भाग्य से तू आई है,
शुभ साइत भी संग लाई है,
हाथ बढ़ा, कर चूम खड़ी हो जनसत्ता कातर अज्ञानी।
नयी जवानी कर मनमानी....

1943

कलकत्ते की दशा

अब कलकत्ते में जीने की जगह नहीं है!
फुटपाथों पर सोने वाले :
जो गरीब हैं
जो अमीर के जूतों के नीचे कुचले हैं,
भूखे हैं जो निराहार हैं
कई दिनों से निश्चेतन हैं
ठौर ठौर पर मरे पड़े हैं
अब कलकत्ते में जीने की जगह नहीं है!!

जिन्दा हैं जो :
हत्यारे हैं–पूँजीपति हैं,
नफाखोर हैं,
गिद्धों के जायज वारिस हैं,
बहुत क्रूर हैं,
मानवता से बहुत दूर हैं!
अब कलकत्ते में जीने की जगह नहीं है!!

सड़ी लाश बदबू करती है;
नाक और नथुने सड़ते हैं,
साँस फेफड़े नहीं खींचते,
दृश्य देख आँखें झिपतीं हैं,

जी घबराता,
खून दौड़ता हुआ ठिठककर थम जाता है,
प्राणों की सारी चेतनता खो जाती है;
अब कलकत्ते में जीने की जगह नहीं है!

बच्चों का क्रय विक्रय होता
वेश्यायें कन्यायें लेतीं
पिता पुत्र की हत्या करता
बहुओं की साड़ी खिंचती हैं
सारी सामाजिक मर्यादा चूर चूर है
न्याय नहीं हैं,
अन्यायी का सर ऊँचा है;
अन्न वस्त्र के धनी डकैतों की चाँदी है;
राज्य-व्यवस्था का अभाव है;
मृत्यु-काल है!
अब कलकत्ते में जीने की जगह नहीं है!!

1943

प्रहरी

हम रक्षक हैं, हम प्रहरी हैं
ढहते घर के, उस नारी के
जिसकी छाती और जाँघों से
हम बिलकुल सटकर चिपके हैं;
हम रक्षक हैं उस समाज के
जो अंधा लँगड़ा लूला है।
हम प्रहरी हैं उस ईश्वर के
जो बहरा, गूँगा, मुरदा है।
हम रक्षक हैं हम प्रहरी हैं
किन्तु हिमालय और सिंधु को
गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र को
खनिज खाद्य को अन्न वस्त्र को
भारत की प्यारी धरती को
प्राणों की कुरबानी करके
एक बार भी हत्यारों से
वापिस लेने में अशक्त हैं।
हम रक्षक हैं हम प्रहरी हैं!!

1943

भैंस

चैन से है भैंस सर में
नीर चंचल गुदगुदा है
मस्त चोले गुदगुदा है
नाम चिन्ता का नहीं है एक भी सर की लहर में।

चैन से है भैंस सर में
विश्व दुख से रो रहा है,
अश्रु से मुख धो रहा है,
यातना ही यातना है आज जग के प्रति विवर में।

चैन से है भैंस सर में
भूख छूटी-प्यास छूटी,
रात की सुख-नींद छूटी,
देश को आजाद कर दें वीर नर हैं इस फिकर में।
चैन से है भैंस सर में।

1943

टामी

सूनी सड़कों पर यहाँ वहाँ
दायें बायें जो घने पेड़
रोमांटिक छाया डाले हैं
टामी को बेहद भाते हैं

उसके जीवन का बीज यहीं
अज्ञात पिता ने बोया था
टामी भी बारम्बार यहीं
अपना पितृत्व जगाता है

नित एक न एक नई युवती
वह फाँस फाँसकर लाता है
टामी सन्तति का बीज नया
फिर आलिङ्गन में बोता है

टामी फौजी वर्दी पहने
युद्ध-स्थल में तो सैनिक है
लेकिन रोमांटिक छाया में
टामी कुत्तों-सा कामी है

1943

आजाद खून

आजाद खून के दौरे से
धमनी धारा हो बहती है;
हरदम पहाड़ से लड़ती है;
चट्टान तोड़ती बढ़ती है;
निर्भय दहाड़ती रहती है!

आजाद खून की ताकत से
हड्डी लोहा हो जाती है,
चोटें पर चोटें खाती है–
आफत से कूटी जाती है,
पर नहीं टूटने आती है!

आजाद खून की गरमी से
टेढ़ा रोंआँ गरमाता है
गरमी पाकर तन जाता है,
फिर नहीं झुकाया जाता है–
ऐसा बलीन हो जाता है!

आजाद खून की साँसों से
मुरदा बस्ती जी उठती है,

चौड़ी छाती में हँसती है,
फिर नहीं ढहाये ढहती है,
फिर नहीं मिटाये मिटती है!

आजाद खून के गौरव से
जीवन से दुख मिट जाता है,
प्रणों से भय हट जाता है,
निर्भीक हृदय हो जाता है,
मस्तक ऊँचा हो जाता है।

1943

काले कर्मठ

काले कर्मठ कमठ हाड़ के
महाशक्ति के विप्लवधारी
कई करोड़ों की संख्या में
फौलादी पंजे फैले हैं
मिल मालिक से भूपतियों से
दल के दल दुष्टों दैत्यों से
आर्थिक शोषण के गुण्डों से
फौलादी पंजे लड़ते हैं
क्रुद्ध खौलते हुये खून की
लम्बी लपटों की उँगली से
होम हवन पृथ्वी के ऊपर
फौलादी पंजे करते हैं
पूरब में पश्चिम प्रदेश में
दक्षिण भारत के त्रिकोण में
असंतुष्ट फौलादी पंजे
अधिकारों का निर्णय करते

1943

घंटा

श्रमजीवी का सच्चा साथी
पुष्ट धातु का तगड़ा घंटा
साँझ सबेरे चौबिस घंटे
घन्नाता है टन्नाता है

मूढ़ अचेतन मानवता के
स्वामी के सर के ऊपर ही
गला फाड़कर पूरे स्वर से
घनन घनन घन चिल्लाता है

नीचे नीचे नीचे उतरो
सिंहासन से नीचे उतरो
देखो नंगी भूखी रोती
व्याकुल मरती खपती जनता

1943

जनता

अत्याचारों के होने से,
लोहू के बहने चुसने से,
बोटी बोटी नुच जाने पर,
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है!

मुरदा होकर भी जीती है
बंदी रहकर भी उठती है
साँसों साँसों पर उड़ती है
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है!

सब देशों में सब राष्ट्रों में
शासक ही शासक मरते हैं
शोषक ही शोषक मरते हैं
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है!

जनता सत्यों की भार्या है,

जागृत जीवन की जननी है;
महामही की महाशक्ति है!
किसी देश या किसी राष्ट्र की
कभी नहीं जनता मरती है!

6–3–1945

रात

मैंने देखा
लम्बी रात
मेरे दरवाजे के पास
काला कम्बल ओढ़े आई;
वह रोती है,
लम्बे काले बाल
चुचुआते हैं;
तन भीगा है;
बेबोले ही,
कँपते कँपते हाथ बढ़ाये,
माँग रही है जलती ज्वाल
पौ फटने की!!

10–3–1945

कवि जी

कवि जी कर में सोंटा थामें
छोटी सी कूँड़ी में डाले
अन्दर ही अन्दर कमरे में
बैठे अपनी भाँग घोंटते

बूटी के गोले को खाके
सावन के दिन की हरियाली
कवि जी के मन में कमरे में
पूरी पूरी छा जाती है

सूने एकाकी जीवन की–
ड्योढ़ी के बाहर आने में
मद के माते बुद्धू कवि जी
अंधे जैसे घबराते हैं।

6–2–1946

बन्दी नेता को पत्र

बन्दीगृह में शोकमग्न हो,
यह न सोचना प्यारे नेता
तुम्हें तुम्हारे भारत-भाई
कोटि कोटि जन भूल गये हैं।

नहीं नहीं यह असत् बात है!
चौके में रोटी खाते में,
कौर कौर के साथ तुम्हारी,
सुधि आती है-रो पड़ते हैं!

चिन्ताओं में गहरे डूबे,
सुख की नींद नहीं सोते हैं।
तुम्हें देखने की इच्छा से,
दिन पहाड़ से काट रहे हैं!

बन्दी नेता! यह सच जानो,
अब तक प्रेम वही है तुमसे;
उसमें कोई कमी नहीं है;
आगे भी वह न्यून न होगा।

10-5-1946

नेताओं से

ऊँचे पहाड़ फूँकती हवा,
गहरे समुद्र सोखती हवा,
धरणी का पेट औंटती हवा,
तुम आ गये बदल गयी हवा!!

बादल के नाग नाथती हवा,
चिड़ियों के पंख काटती हवा,
बरबादियों की बावली हवा,
तुम आ गये बदल गयी हवा!!

नदियों की बाढ़ रोकती हवा,
झरनों की राह रोकती हवा,
जीवन की रीढ़ तोड़ती हवा,
तुम आ गये बदल गयी हवा!!

अब साधुवाद की बहे हवा,
अब साम्यवाद की बहे हवा,
अब इन्कलाब की बहे हवा,
तुम आ गये थिरक रही हवा!!

8-8-1946

जहरी

पैदा हुई गरीबी में,
पाली गई गरीबी में!
ब्याही गई गरीबी में,
माता हुई गरीबी में!!

हँसिया लिया गरीबी में,
खुरपी गही गरीबी में!
काटी घास गरीबी में,
छीली घास गरीबी में!!

खाती रही गरीबी से,
जीती रही गरीबी से,
सब दिन पिसी गरीबी से
सब दिन लड़ी गरीबी से!!

बुड्ढी हुई गरीबी से,
टूटी रीढ़ गरीबी से!
आँधी उठी गरीबी से,
दीपक बुझा गरीबी से!!

जहरी गयी, गरीबी है!
अब भी वही गरीबी है!!
चिन्तामयी गरीबी है!
नहीं मिटी है, नहीं मिटी!!

8-8-1946

कपड़े के अकाल में

रोम रोम को निहार
निरावरण, वस्त्रहीन,
ललनायें कहती हैं
बार बार धैर्य हार-
मीन बनें, गहें नीर,
सागर में समा जायँ;
धरा फटे, पैठ जायँ;
किसी तरह बचे लाज!

12-8-1946

फाँसी का बन्दी

बन्दीगृह में आने से पहले तो मैं इन्सान था
मनु जी का प्यारा बेटा था मुझको अति अभिमान था
मुझको मेरी आजादी का पूरा पूरा ज्ञान था
मुझको मेरी लाचारी का कोई नहीं गुमान था

जब भूखा होता था फौरन हतियाता बन्दूक था
पक्ष मार गिराता था मैं मेरा वार अचूक था
हिंसक से हिंसक पशुओं का मैं करता आखेट था
पेड़ तले मैं आग जलाये भरता अपना पेट था

थर्राने वाला पृथ्वी को नभ को मेरा नाद था
उससे बढ़कर काले बादल का भी नहीं निनाद था
मेरे आगे तूफानों का झंझा सब बेकार था
मेरी ताकत ही ताकत का फैला यश विस्तार था

मैंने लड़कर सौ सुभटों से जीता रण-संग्राम था
पर्वत की सुन्दरतम युवती का जीता उरधाम था

मेरे जीवन का यह अनुभव प्यारा था, अभिराम था
छवि ही छवि मधु ही मधु लेकर चमका चाँद ललाम था

मैं बैठा सुनता रहता था वह गाती प्रिय गीत थी
मेरी बर्बरता को हरती रहती हरदम प्रीत थी
मैं पत्थर था, मक्खन होकर पिघला, उसकी जीत थी
आँखों में ही हँसते रहना मेरी उसकी रीत थी

लेकिन मैंने देखा उसका कोई कपटी यार था
जिससे उसको मुझसे ज्यादा चुपके चुपके प्यार था
अब उसके मीठे चुम्बन में बिष का ही संचार था
अब कोमल भुज-बंधन में ही बन्धन का कटुभार था

मेरी बर्बरता फिर जागी मुझ पर खून सवार था
मैंने उस प्यारी को मारा जिससे प्रेम अपार था
मैंने उसको मरते देखा जिस पर मैं बलिहार था
जिसकी इच्छा पर मैं जीने मरने को तैयार था

जज ने मुझको फाँदी दे दी हत्या के अभियोग में
मेरी सारी ताकत हर ली हत्या के अभियोग में
मेरी सारी मस्ती हर ली हत्या के अभियोग में
न्याय नहीं अन्याय हुआ है हत्या के अभियोग में

अब बन्दी घर में रहता हूँ मेरा अन्तिम काल है
अब मेरे जीवन में कोई आता नहीं उबाल है
अब मेरे जीते रहने का कोई नहीं सवाल है
ऊँची दीवारों का घेरा घेरे अति विकराल है

अब प्यारी की नहीं कल्पना आज मृत्यु का ध्यान है
अब प्यारी की नहीं तृषा है आज गरल का पान है
अब प्यारी की नहीं प्रतीक्षा आज मृत्यु का राज है
आज बटोही के चलने के विदा समय का साज है

5-9-1946

जागरण की कामना

रात
लम्बी है
अँधेरा चल रहा है
भूमि-नभ का
दीप-तारा रो रहा है
आदमी भी
हाथ बाँधे
सो रहा है
स्वप्न
आँखों में
तड़पता खो रहा है
भोर होवे
भोर होवे-
हो रहा है

20-9-1946

हम उजाला जगमगाना चाहते हैं

हम उजाला जगमगाना चाहते हैं
अब अँधेरे को हटाना चाहते हैं

हम मरे दिल को जिलाना चाहते हैं
हम गिरे सिर को उठाना चाहते हैं

बेसुरा स्वर हम मिलाना चाहते हैं
ताल-तुक पर गान गाना चाहते हैं

हम सबों को सम बनाना चाहते हैं
अब बराबर पर बिठाना चाहते हैं

हम उन्हें धरती दिलाना चाहते हैं
जो वहाँ सोना उगाना चाहते हैं

28-9-1946

झरने दो

झरने दो
पत्ती-पत्ती को;
नग्न बनें
तरु-लता-बेलि सब;
एक न आवें
कली, फूल, फल;
सुलभ न होवें
गंध, रूप, रस।

उड़ें,
त्याग दें
प्रेम-प्रीत की रीतें मधुकर।

मत घबराओ;
नहीं बहाओ
आँसू-धारा,
जीवन-धारा।
दुखते,
कँपते

दोनों हाथों
बाग लगाओ कल्पवृक्ष के।

निश्चय आयेगी वसन्त-रितु,
धरती की छाती फूलेगी!
मानव की संस्कृति महकेगी,
फल लायेगी!!

4-10-1946

मोती और टामी

पानी पानी पानी बरसा
पानी बरसा जोर से
हिम है बरसा हिम है बरसा
हिम है बरसा जोर से
सरदी सरदी सरदी सरदी
सरदी ही चहुँ ओर है
मारे सरदी के अब गलता
अँगुली का हर पोर है

ठंडक में बेचारा मोती
थर थर थर है काँपता
जैसे हिम के ऊपर चूहा
थर थर थर है काँपता
हड्डी पसली में जाड़ा है
तन में मन में शीत है
मोती आफत का मारा है
सरदी से भयभीत है

दोनों तलुवों में ठिठुरन है
ठिठुरन है हर अंग में
ओठों में स्याही छाई है
और सफेदी रंग में
नाक हिमानी मेरु-गुफा है
कान हिमानी पात हैं
शीश हिमालय सा शीतल है
हाथ बरफ को मात हैं

घर होता तो घर में छिपता
लेकिन बेघर-बार है
दीवारों का ऊँचा घेरा
उसको स्वप्न विचार है
जिन्दा रहने के खातिर ही
टामी के सँग-साथ में
टामी को दिल से लिपटाये
लेटा है फुटपाथ में

पैसे वाले पूँजी वाले
सब जन घर में बंद हैं
ऊनी कपड़े पहने खुश हैं
उनको बहु-आनंद हैं
दीवारों की गरमाहट को
उनके घर में आग है
दौड़ाने को तन में गरमी
बोतल भरी शराब है

सुन्दरियों के आलिंगन में
उनकी प्रमुदित देह है
उनके शोणित में उफनाता
कामिनियों का नेह है
लेकिन टामी के साथी की
मोती की जो बात है
उसको सुनना उसको गुनना
आँसू की बरसात है

मोती मुरदा मात पिता की
लावारिस संतान है
उसके जीवन में अँधियारा
बरफीला तूफान है
बाहर की सरदी से ज्यादा
भीतर हिम-सन्ताप है
उसको जीते रहने मरते-
रहने का अभिशाप है

बेचारा खाने को तरसा
टुकड़े टुकड़े माँग के
बेचारा पैसों को तरसा
टुकड़े टुकड़े माँग के
होगी उसकी आयु बहुत तो
होगी तेरह साल की
लेकिन उसने पीड़ा पाई
सौ सौ काल कराल की

मोती ने तेरह सालों में
तेरह सदियाँ देख लीं
आफत की तेरह सदियों की
सब सब घड़ियाँ देख लीं
सूरज के उगते आते ही
उसका होता खून था

सूरज के ढलते जाते ही
उसका होता खून था
लेकिन मोती मरते मरते
जी जाने में वीर था
लड़ते लड़ते गिर जाने पर
उठ आने में वीर था
टकराने में बिछ जाने में
मुसकाने में वीर था
सागर-तल में डूबा रहकर
उतराने में वीर था

मोती माने है : सरदी में
अब की हिम बरसात में
नि:संशय वह बच जायेगा
मौत न होगी रात में
दिन होते ही दहकायेगा
तन को रवि के राग में
हिम की सरदी को मेटेगा
फौरन रवि की आग में

पर टामी ने देखा मोती
मरणाकुल बेहाल है
मोती की अन्तिम साँसों में
बैठा काल कराल है
बेचारा टामी कातर हो
रोया आँसू शोक में
अपने साथी को जब उसने
मरते देखा लोक में

भिंसारे जब दिनकर दहका
दहकी धूप अपार की
ठंडक की जड़ता सब पिघली
धरती के विस्तार की
भंगी ने आ टामी को फिर
मारे डंडे तान के

प्रिय साथी की देह घसीटी
लकड़ी जैसी जान के
टामी भौंका पीछे दौड़ा
दूर गया उस ओर से
मरघट में भी जाकर रोया
दोनों लोचन कोर से
फिर बेचारा राख लपेटे
मोती की प्रिय देह की
लौटा धीरे धीरे रोता
गुनता बातें नेह की

जाने कितने दिन बीते हैं
फिर भी बात नवीन है
पतझर के पत्तों सी तो वह
होती नहीं मलीन है
मोती के जीवन की गाथा
दारुण करुणा गीत है
उसमें टामी के जीवन की
झनकारित मधु प्रीत है।

15–10–1946

सीता मैया

जनकपुरी की पैदाइस है,
अवधपुरी में आई है।
जनका ठाकुर की बेटी है,
रमचन्दा को ब्याही है॥

सोना, चाँदी, मोती, मूँगा,
गहना जेवर नहीं मिला।
सीना, कान, गला सूना है;
पग, पहुँचा सब सूना है॥

चीकट, गंदी, निरी उटंगी
चिथड़ा धोती लिपटी है।
हड्डी, पसली, चमड़ी, पिंडुली,
दुनिया भर को दिखती है॥

मूसल, चक्की, कुटना-पिसना,
सब तड़के से करती है।
खपरे-छाये कच्चे घर में,
रामराज्य में रहती है॥

भेड़ों को बकरी को लेकर,
हार चराने जाती है।
'घम घम' घाम हवा खाती है,
दिन छिपते फिर आती है॥

कौड़ी मोल नहीं रखती है,
आँखें भरकर रोती है।
धरती माता की गोदी में,
सीता चुपके सोती है॥

10-11-1946

खेतिहर

अबकी धान बहुत उपजा है
पेड़ इकहरे दुगुन गये हैं
धरती पर लद गयी फसल है
रत्ती भर अब जगह नहीं है
खेत काटने की इच्छा से
खेतिहर प्रिय जन साथ समेटे
काछा मारे-देह उघारे
आ धमका है आज सबेरे
सबके हाथों में हँसिया है
सबकी बाँहों में ताकत है
जल्दी जल्दी साँसें लेते
सब जन मन से काट रहे हैं
एक लगन से, एक ध्येय से
जीवन का श्रम सफल हुआ है
जिन्दा दिल होकर उठने को
खाने को भरपूर मिला है

24-7-1947

कुली

जो कुली पीठ पर बोझ लिये चलता है
हाड़ों पर अपने भार लिये चलता है
कंकड़ पत्थर रोड़ों पर पग धरता है
हरदम आगे ही आगे को बढ़ता है
चलते चलते तलुवे एड़ी घिसता है
रुकने टिकने को जो मरना कहता है
लम्बे पथ की पूरी दूरी हरता है
सूरज की किरनों में तपता तचता है
श्रमजल में जो डूबा डूबा रहता है
आँखें खोले बेहद अंधा रहता है
मुँह खोले भी बेहद गूँगा रहता है
वह राही की यात्रा हलकी करता है
वह खोटी दुनिया में बरबस बिकता है
कम दामों में–कम आनों में पिसता है
जब तक जीता है तिल तिलकर घिसता है
शोषक के पैरों के नीचे मिटता है

25–7–1947

इकाई और समाज

एक राम के तीक्ष्ण बाण से,
ध्वंस हुआ,
हो गया पराजित
सोने की लंका का रावण
लंकापति चंचल, मोहातुर, काम-अंध था
परम सुन्दरी सीता के हित वह व्याकुल था।

जनक यज्ञ में नहीं मिली थी,
इसी हेतु मृग-छलना द्वारा,
वह सीता को हर लाया था
तृप्ति चाहता था अतृप्त कन्दर्प-वृत्ति की!!

आयोध्यापति बनवासी थे!
अपनी पत्नी के विछोह में,
काम-नीति को धर्म-रूप दे सदाचार का,
वीर वानरों में समाज-हित की रक्षा के
नव विचार का बार बार अतिशय प्रचार कर,

सब को अपना मित्र बनाकर,
पूर्ति चाहते थे सब के बल पर अपनी ही काम-नीति को
और नहीं उद्देश्य अन्य था किसी तरह का
दोनों का वह युद्ध वासना की अतृप्ति का महासमर था!

किन्तु आज युग बदल गया है!
नहीं राम हैं और न रावण!

26-7-1947

देवतों की नींद

धूप चाँदी सी चमकती ही रही
धूल मोती सी दमकती ही रही
श्वेत गंगा-धार बहती ही रही
अन्न धरती भी उगलती ही रही
किन्तु जनता की अमानिशि ही रही
भूख से मरती तड़पती ही रही
मृत्यु की करवाल चलती ही रही
देवतों की फौज सोती ही रही

28-7-1947

कमकर

कमकर,
रोकर–हाथ जोड़कर,
पाँव पूजकर,
दया–भीख से
नहीं कमाते अपनी रोटी।

वह दिन भर
मेहनत करते हैं;
पत्थर लोहे से लड़ते हैं,
लड़ते लड़ते घिस जाते हैं,
घिसते घिसते मिट जाते हैं,
तब पाते हैं
अपनी रोटी, अपना चिथड़ा,
अपना दरबा!

उनके शोषक पूँजीपति हैं,
जो उनकी मेहनत की पूँजी,
अपने बैंकों में धरते हैं;

जो उनके पौरुष-प्रतिभा को
जल्दी जल्दी चर जाते हैं,
मोटे होकर इतराते हैं,
और उन्हें मुरदा करते हैं!

पर
अब युग ने पलटा खाया
उनमें बल लड़ने का आया
वह
शोषण से युद्ध ठानते
थैलीशाहों को पछाड़ते
माँगों को स्वीकार कराते
चेत गये हैं कमकर सारे
साम्यवाद की अर्थ नीति से
राजनीति को जीत रहे हैं!!

8-10-1947

यह जो लाल गुलाब खिला है

हे मेरी तुम!
यह जो लाल गुलाब खिला है,
खिला करेगा
यह जो रूप अपार हँसा है,
हँसा करेगा
यह जो प्रेम-पराग उड़ा है,
उड़ा करेगा
धरती का उर रूप-प्रेम-मधु,
पिया करेगा।

5-11-1947

यह जो दीप जला करता है

हे मेरी तुम!
यह जो दीप जला करता है,
जला करेगा
अँधियारा हरता रहता है,
हरा करेगा
उजियारा भरता रहता है,
भरा करेगा
धरती में स्वर्गिक छवि-शोभा,
दिया करेगा।

5-11-1947

यह जो आलिंगन होता है

हे मेरी तुम!
यह जो आलिंगन होता है,
हुआ करेगा
यह जो प्यार-पुलक खिलता है,
खिला करेगा
यह जो अधरामृत झरता है,
झरा करेगा
धरती में वासंतिक उत्सव,
हुआ करेगा।

5-11-1947

यह जो गान हुआ करता है

हे मेरी तुम!
यह जो गान हुआ करता है,
हुआ करेगा
भू-नभ-छोर छुआ करता है,
छुआ करेगा
हृदयालोड़ित नित करता है,
किया करेगा
धरती की प्रत्येक साँस में,
बजा करेगा।

6-11-1947

यह जो सागर लहराता है

हे मेरी तुम!
यह जो सागर लहराता है,
लहरायेगा
मिलनातुर विरही पुलिनों पर,
हहरायेगा
मोती-आँसू की नव निधियाँ,
बिखरायेगा
धरती को आलिंगन करने,
बढ़ आयेगा।

6-11-1947

यह जो अंकुर उग आये हैं

हे मेरी तुम!
यह जो अंकुर उग आये हैं,
बढ़ जायेंगे
आँधी औ तूफान नहीं कुछ,
कर पाएँगे
निष्ठुर से निष्ठुर उन्मूलन,
सह जायेंगे
धरती के उर में फूलेंगे,
फल लायेंगे!

6-11-1947

यह जो दीवारें घेरे हैं

हे मेरी तुम!
यह जो दीवारें घेरे हैं,
ढह जायेंगी
यह जो सीमायें रोके हैं,
मिट जायेंगी
यह जो आत्मायें बंदी हैं,
खुल जायेंगी
धरती की उन्मुक्त दिशाएँ,
मुसकायेंगी।

6-11-1947

यह जो चौड़ी चट्टाने हैं

हे मेरी तुम!
यह जो चौड़ी चट्टानें हैं,
घिस जायेंगी
पैरों की ठोकर के नीचे,
पिस जायेंगी
गंगा की उर्वर मिट्टी हो,
बह आयेंगी
धरती की उत्तम खेती को,
उपजायेंगी!

6-11-1947

काले काले छाये बादल

हे मेरी तुम!
काले काले छाये बादल,
उड़ जायेंगे
गाँवों खेतों मैदानों को,
तज जायेंगे
शंका संकट के दिन भारी
कट जायेंगे,
धरती की कंचन काया को,
चमकायेंगे।

7-11-1947

यह जो नाग उठे हैं काले

हे मेरी तुम!
यह जो नाग उठे हैं, काले,
फन काढ़ेंगे
चौतरफा से आगे बढ़कर,
फुफकारेंगे
जहरीले घातक दंशन से,
अरि मारेंगे
थैलीशाहों की केंचुल को,
अब त्यागेंगे।

7-11-1947

यह जो आशा का उपवन है

हे मेरी तुम!
यह जो आशा का उपवन है,
हरियायेगा
श्यामल कोमल पल्लव-दल से,
लहरायेगा
सुन्दर से सुन्दर पुष्पों को,
महकायेगा
धरती में मंगल जीवन के,
फल लायेगा।

7-11-1947

यह जो आँसू के सागर हैं

हे मेरी तुम!
यह जो आँसू के सागर हैं,
लहरायेंगे
पीड़ा की अन्तर-ध्वनियों से,
हहरायेंगे
प्रेमालिंगन की क्रीड़ा को,
अकुलायेंगे
धरती के कष्टों कूलों से,
टकरायेंगे।

7-11-1947

यह जो स्वप्नों की छवियाँ हैं

हे मेरी तुम!
यह जो स्वप्नों की छवियाँ हैं,
मिट जायेंगी
सुन्दर से सुन्दर आकृतियाँ,
छिप जायेंगी
पल प्रतिपल यह प्रेमी आँखें,
अकुलायेंगी
भग्न मूर्तियों के चरणों में,
मँडरायेंगी।

7-11-1947

यह जो खंडित स्वप्न मूर्ति है

हे मेरी तुम!
यह जो खंडित स्वप्न-मूर्ति है,
मुसकायेगी
रस के निर्झर, मधु की वर्षा,
बरसायेगी
जीवन का संगीत सुनाकर
इठलायेगी
धरती के ओठों में चुम्बन,
भर जायेगी।

7-11-1947

यह जो नृत्यातुर बालाएँ

हे मेरी तुम!
यह जो नृत्यातुर बालाएँ,
मदमाती हैं
मेरे मन के रंगस्थल में,
नच जाती हैं
मुझको तजकर जो मिट्टी में,
मिल जाती हैं
कुंजों में ही कलियाँ होकर,
खिल आती हैं।

8-11-1947

यह जो सुन्दरता सजती है

हे मेरी तुम!
यह जो सुन्दरता सजती है,
मुसकाती है
मेरे मन के प्रेमालय में,
बस जाती है
मेरा बुझता जीवन दीपक,
उकसाती है
धरती की आँखों में आभा,
भर जाती है।

8-11-1947

यह जो अंगारे जलते हैं

हे मेरी तुम!
यह जो अंगारे जलते हैं,
बुझ जाते हैं
अपनी आभा से तड़पाकर,
मर जाते हैं
वन के वन जिनकी ज्वाला से,
जल जाते हैं
धरती के पावन बलिदानी,
कहलाते हैं।

9-11-1947

यह जो कौआ मोर बना है

हे मेरी तुम!
यह जो कौआ मोर बना है,
इतराता है
कौओं के सँग में रहने से,
घबराता है
मोरों के सँग में रहने से,
सुख पाता है
धरती में अपयश का भागी
कहलाता है।

9–11–1947

अंधकार के उर में लाखों दीप जले हैं

हे मेरी तुम!
अंधकार के उर में लाखों,
दीप जले हैं
उन दीपों से चिर आलोकित,
स्वप्न हुए हैं
उन स्वप्नों से चिर आभासित,
सत्य हुए हैं
उन सत्यों से ही धरती में,
कृत्य हुए हैं।

10-11-1947

यह जो दीपक आज जले हैं

हे मेरी तुम!
यह जो दीपक आज जले हैं,
तम के घर में
भूख प्यास आँसू अभाव के,
क्षुब्ध उदर में
भग्न मूर्तियों के विदीर्ण,
आहत अन्तर में
जीवन प्राण प्रकाश भरेंगे,
भव अम्बर में।

11-11-1947

यह जो आज समीर प्रकम्पित

हे मेरी तुम!
यह जो आज समीर प्रकम्पित,
प्रवहमान है
क्षिति-छोरों अम्बर-कोरों में,
प्राणवान है
अश्रुधार विगलित प्रपात-सा,
मूर्तिमान है
धरती की व्याकुल वीणा का,
करुण गान है।

12-11-1947

यह जो तरुओं की पत्रावलि

हे मेरी तुम!
यह जो तरुओं की पत्रावलि,
लहराती है
फल-फूलों के आलिंगन में,
सुख पाती है
पीले पतझर के आने पर,
झर जाती है
मूलों का बलवर्धक भोजन,
बन जाती है।

12-11-1947

काली मिट्टी हल से जोतो

हे मेरी तुम!
काली मिट्टी हल से जोतो,
बीज खिलाओ
खून पसीना पानी सींचो,
प्यास बुझाओ
महाशक्ति की नयी फसल का,
अन्न उगाओ
धरती के जीवन-सत्ता की,
भूख मिटाओ।

12-11-1947

दीपदान की ज्योति हमारी

हे मेरी तुम
दीपदान की ज्योति हमारी,
तम को हूले
पंचतत्व अब स्वर्ग-लोक की,
प्रतिमा छू ले
घृणा तत्व अब कभी न तम का,
झूला झूले
भूमि-पुत्र के प्रेम-तत्त्व से,
धरती फूले।

12-11-1947

यह समीर जो रूप कुंज का मधुपायी है

हे मेरी तुम!
यह समीर जो रूप-कुंज का,
मधुपायी है
रूप-राग का रूप-धर्म का,
अनुयायी है
दास-वृत्ति उसने मुकुलों की,
अपनायी है
चितवन के बंदी होने में,
गति पायी है।

13-11-1947

यह जो प्रात समीर किरन से

हे मेरी तुम!
यह जो प्रात समीर किरन से,
भूमि जोतता
अरुणोदय के अमर बीज बो,
रक्त सींचता
कोटि कोटि अंकुर उपजाकर,
सैन्य साजता
प्रतिगामी जीवन-विरोध का,
युद्ध जीतता

14-11-1947

यह सुमेरु जो महामेरु से टकराता है

हे मेरी तुम!
यह समीर जो महामेरु से,
टकराता है
बादल बिजली और प्रलय से,
लड़ जाता है
बाड़वाग्नि से जल-थल अम्बर,
दहकाता है
जन-सेवा के विजय-केतु को,
फहराता है।

14-11-1947

प्रात का सूरज

शाम का सूरज नहीं है–प्रात का है,
चीर प्राची का कलेजा उठ रहा है।

रात का भीगा धरातल आँसुओं से,
चूमकर किरनें सुनहली हँस रहा है।

दीप जो जलता रहा था, मिट रहा था,
आज उसका ही उजाला बढ़ रहा है!

खेत में जो अन्न कच्चा ही खड़ा था,
आज कंचन सा मधुर वह पक रहा है।

26–12–1947

भोर होवे

रात लम्बी है–
अँधेरा चल रहा है!
भूमि–नभ का
दीप तारा बुझ रहा है!
आदमी भी
हाथ बाँधे सो रहा है!
स्वप्न आँखों में
तड़पता खो रहा है!
भोर होवे भोर होवे
हो रहा है!!

26–12–1947

स्वर्ण सबेरा

रक्त हमारा चमका!
भू-नभ का, दोनों का-
माथा दम दम दमका!!

भोर हुआ, जग जागा!
दूर अँधेरा भागा!!
नदी-धार में,
थल कछार में,
कहाँ नहीं है-
रस जीवन का छलका!!

स्वत्व मिला, बल आया!
जन-जीवन मुसकाया!!
कर्म क्षेत्र में
ज्ञान क्षेत्र में
कहाँ नहीं है-
स्वर्ण-सबेरा झलका!!
रक्त हमारा चमका!!

26-12-1947

विष-बीज

हम पराये प्राण लेकर जी रहे हैं।
रक्त की धारा बहाकर नाव अपनी खे रहे हैं॥
राम और रहीम के घर तुच्छ मन से जा रहे हैं!
गीत मानव के हृदय के द्वेष पूरित गा रहे हैं।
काम राक्षस के हृदय के क्रूर बर्बर कर रहे हैं।
चाँद तारे और सूरज सब बुझाते जा रहे हैं॥
राह में पथभ्रष्ट होकर कूल तजकर खो रहे हैं।
भूमि में बिष-बीज घाती नाश के ही बो रहे हैं॥

26-12-1947

चिड़ीमार

चिड़ीमार ने मारी
गोली।
हवा चीरती हत्या
झपटी।
मुक्त जीव ने खाया
गोता।
भेद गयी जीवन की
छाती।
बूँद-बूँद से टपका
लोहू।
गिरा पट्ट से मुरदा
पक्षी।
काँप गयी धरती की
गोदी।
पेट भरा मानव ने
अपना।

27-12-1947

दीपक और स्वप्न

यह दीपक की अमर वृत्ति है
सस्मित जलना
अंधकार के पद चिन्हों को
दीपित करना
किरनों की आलोक मूर्तियाँ
निर्मित करना
स्वप्नों को मानव के उर में
जीवित रखना।

28–12–1947

काश्मीर

काश्मीर की धरती
डोंगर राजा राज्य हटाए,
जनता की सरकार बनाये,
शक्ति-सूर्य-सा हँसती!
काश्मीर की धरती आग उगलती लड़ती!!

फूलों की उल्लास धारियाँ
केसर की स्वर्णाभ क्यारियाँ,
छाती फाड़े दिखतीं!
काश्मीर की धरती क्षत विक्षत लड़ती!!

चट्टानें गोली खाती हैं,
छाती क्षण-क्षण फट जाती हैं,
पर तत्क्षण ही जुड़तीं!
काश्मीर की धरती जीती जगती लड़ती!!

नर-नारी बन्दूक लिये हैं,
बच्चे भी बन्दूक लिये हैं,

पल्टन उमड़ी पड़ती!
काश्मीर की धरती जन प्रति जन से लड़ती!!

भागो ऐ हमलावर! भागो,
सोओ दुष्टों कभी न जागो,
तड़ तड़ गोली चलती!
काश्मीर की धरती जय जय जयकर लड़ती!!

28-12-1947

जोनी

(काश्मीर में लड़ती, एक दूध बेचने वाली लड़की का चित्र देखकर उसकी प्रशस्ति में)

जोनी!
तेरी बड़ी उमर हो
बड़ी उमर हो, बड़ी उमर हो!!
मौत न तुझको छूने पाये
तू जिन्दा रहकर मुसकाये
काश्मीर सब खुशी मनाये
केशर क्यारी स्वर्ण लुटाये
जोनी!
तेरी बड़ी उमर हो
बड़ी उमर हो, बड़ी उमर हो!!

तेरी हिम्मत से सब हारें
बैरी तुझको देख सिधारें
पर्वत घाटी तुझे पुकारें
तुझ पर शोभा सुषमा वारें
जोनी!
तेरी बड़ी उमर हो
बड़ी उमर हो, बड़ी उमर हो!!

हर झरना तेरे संग दौड़े
हर बच्चा तेरे संग दौड़े
हर नारी तेरे संग दौड़े
उसी ध्येय से नर भी दौड़े
जोनी!
तेरी बड़ी उमर हो
बड़ी उमर हो, बड़ी उमर हो!!

तेरे माथे को नभ चूमे
तेरे पाँवों को थल चूमे
तेरी वाणी घर घर गूँजे
आशा जीवन यौवन फूले
जोनी!
तेरी बड़ी उमर हो
बड़ी उमर हो, बड़ी उमर हो!!

28-12-1947

महकती जिन्दगी

फूलदानों में महकती जिन्दगी है।

स्वर्ण मुद्रा के गृहों में,
रूप-छवि की प्रतनु परियाँ नाचती हैं।

स्वप्न के शृंगार-जीवन के विलासी,
ओठ में मुसकान लेकर,
वेणु-वादन की सुरा पी
काव्य-कलियाँ चूमते हैं।

नवल उत्पल सहस-दल का हृदय खोले,
आँख खोले, राग-रंजित उषा-उत्सव देखते हैं।

वासनाओं के दिगम्बर महासागर,
अवनि-अंगों से ललककर मिल रहे हैं।
मृदुल कुच के कुमुद-दल पर,
विमल मौक्तिक-माल जगमग,
चपल जुगनू की लहर-सी सोहती है।

दीप की चन्दन-उजाली,
रजत-रवि के किरन-पथ-सी,

अमिट फैली,
मुस्कुराती मोहती है।

गीत, गंध, पराग, मधु, मद,
मदिर पुलकाकुल प्रणय को पूजते हैं,
और लज्जा से रँगी रक्ताभ द्युति को भेंटते हैं!
यह अमीरों की दशा है!!

किन्तु शोषित सर्वहारा,
अपहरण की यातना से व्यथित विह्वल
स्वत्व की अपनी लड़ाई
हिंस्र पशुओं–भेड़ियों से लड़ रहा है;
भूमि में अपने रुधिर से,
लाल टेसू के अंगारे बो रहा है;

क्रान्तिकारी औ' लड़ाकू सभ्यता के नव क्षितिज पर,
लाल झंडा को उठाये चल रहा है;

धन–कुबेरों के किरायेदार खूनी,
सब तरफ से वार उस पर कर रहे हैं;
गिद्ध उसकी देह जिन्दा चींथते हैं;
और उसकी हड्डियों का फास्फोरस खींचने को
चोंच के आघात पैने मारते हैं।

सर्वहारा तिलमिलाकर
घूमकर फिर,

लौह के पंजे पसारे
मांस-मज्जा हीन हड्डी की शिला-सा
दौड़ता है कड़कड़ाकर
और बज्राघात करता है, कुटिल अन्यायियों पर
ध्वंस करता है किलेबन्दी सकल पैशाचिकों की
और थैलीशाह के राष्ट्रीय-आहुति-यज्ञ की खूनी पिपासा;
अग्रणी बन क्षुधा-पीड़ित वस्त्र-पीड़ित श्रमिक जन का,
साथ लेकर बुद्धिजीवी व्यक्तियों के विपुल दल को
क्रांति का भूचाल होकर
आग, बिजली के प्रलय से जीतता है, देश का वर वक्ष सुन्दर
और फिर प्रतिक्रियावादी शक्तियों को कर अपाहिज,
सर्वहारा राज्य की स्थापना के,
कार्य करता है अवनि पर।

फूल खिलते हैं मनोहर
नहीं काँटे बेधते हैं
गीत मानव का हृदय गाता हुआ गुंजारता है
सर्वप्रिय संस्कृति धरा पर अवतरित हो
नाचती वो झूमती है।

2-8-1948

जो शिलाएँ तोड़ते हैं

जिन्दगी को
वह गढ़ेंगे जो शिलाएँ तोड़ते हैं,
जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएँ मोड़ते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ!!

जिंदगी को
वह गढ़ेंगे जो खदानें खोदते हैं,
लौह के सोये असुर को कर्म-रथ में जोतते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ!!

जिंदगी को
वह गढ़ेंगे जो प्रभंजन हाँकते हैं,
शूरवीरों के चरण से रक्त-रेखा आँकते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ!!

जिंदगी को
वह गढ़ेंगे जो प्रलय को रोकते हैं,
रक्त से रंजित धरा पर शांति का पथ खोजते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ!!

मैं नया इंसान हूँ इस यज्ञ में सहयोग दूँगा।
खूबसूरत जिंदगी की नौजवानी भोग लूँगा॥

9-11-1948

केदारनाथ अग्रवाल
एवं
रचना-संसार